



शिल्पी



# शिल्पी

श्री सुमित्रानंदन पंत



राजकमल प्रकाशन

सूच्य : चार रूपए

© १९४० सुमिथार्नरन पंत इनाहावाय

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली

मुद्रक राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स २७ विद्याधर कवीर रोड दिल्ली

## विज्ञापन

चित्परी में मेरे तीन काब्य-रूपक संगृहीत हैं जो अंगन पाठागारापी के विभिन्न केन्द्रों में प्रसारित हो चुके हैं। इन रूपकों में अन्यान्य विस्व-संघर्ष को बापी देने के साथ ही नवीन जीवन-निर्माण की दिशा भी धोर इंगित करने का प्रयत्न किया गया है।

१२ सितंबर ४९ }

सुमित्रानन्दन पंत



४७० नगेन्द्र को  
सल्लोह





## अनुक्रम

- १ शिल्पी
- २ अक्षर खोप
- ३ अक्षरा

पृष्ठ

६

४७

६०



# शिल्पी

(कलाकार का अंतःसंघर्ष)



शिल्पी  
शिष्या  
दशक गण  
ग्रामत्रित जन  
जनमायक



## प्रथम दृश्य

[ छिन्नी का कला-कल, जिसमें विविध आकार प्रकार की मूर्तियाँ रखी हैं : छिन्नी की दिव्या मूर्तियों को भाङ्ग पोंछकर प्रसन्नधारियों में लेंगे रही हैं : कुछ छिन्नी पर्व की भाङ्ग में एक लकीर प्रतिभा के निर्माण में संलग्न हैं : वह वसन्तित होकर छिन्नी पर हथौड़ी चला रहा है और बीच में पुनपुनरा जाता है : ]

गीत

निर्मल हृदय सिन्हा ! (निश्चय)  
 कैसे पाई प्रियतम की छवि  
 बड़ पापान सिन्हा !  
 मति की छेनी इप्रिय कृष्ण  
 पीत्य धन दुष्मा कर नृत्ति  
 कैसे कटे प्रवेदन पाह्न  
 घर से रिमा मिला !  
 दीप उसे छाया धीमेसा  
 मन ने नमता का तम पाता  
 धमर बेनुवा स्वर्ण बिना कथ  
 मानत कथत जिना !

छिन्नी— (कीलकर)

बहु पापान नहीं मानेना मेरा शोक ! ---  
 निन्दुर भाव नहीं मिलेगा --- "इस पत्थर से  
 माना पत्थी करना धपना सिर जुनना है !  
 मध बूझ निन्दुर, बुरावही मर पुन ! --- "बहु  
 सीम्य कला के स्वर्ण से कैसे बैठेगा  
 कदि वस्तु प्राणा के बड़ संस्कार बदल कर !  
 मरती के निश्चयन का निश्चय ठमस यह



अपना निष्किय घामरा सहज नहीं छोड़ेगा  
 इसके धंसत में छोई जो मूक बैठना  
 कुर्मति उसे नहीं बनने देगा बावक बन !  
 जो खेती भी टूट गई। 'चँह, कुछ पड़ गई  
 मरी धार छिर जपा जपा कर ! सरता बेटी  
 मुझे नया सुसनुम फुलना ता देना बेटा !  
 यह किरा बेकाम हो गया फूल पत्तियाँ  
 नहीं काटता तिलरा भी सेती घाना ! 'हूँ  
 पहिले बोलाई मे मूँ ! 'यह रहा बेरना !  
 ठोप पीट, देखूँ पत्थर में फूल किस छठे !  
 (फिर कार्य-व्यस्त हो जाता है)

### गीत

धा जाता बसत पत्थर में  
 प्राणों का संवन प्रस्तर में  
 जगती दिव्य ज्योति धतरमें  
 तम के मूल हिमा !  
 वीपित होना धंधकार नव  
 जड़ में बैठन का निवार नव  
 नाम जपमय निराकार नव  
 सार्वक मृजन कला !  
 जीवन संवर्धन होना मय  
 मिटना जरा मरण कुग का मय  
 हूँ उठना नव पुन अन्धोदय  
 जब संधाम भिमा !

(द्विती रसकर मूर्ति का निरीक्षण करता है)

मिलपी—

ईश्वर ! 'यब जातरपापावसजीव हुया कृत् । ...  
 मुग निपनव की वृष्टमूमि माकार हो गई,—  
 प्रस्तर के उर में मुग जीवन का समुद्र ही  
 निम्नोनिग हो उठा धुष्य जन पावेनों में !

मेघों में विद्युत् सी तस्मिन् में भस्म सी  
 ध्वंकार को भीर, गई बेतना धिक्का क्यों  
 बीड़ रही जन मन में बीपित कर द्रव धानन !  
 गर्वोन्मत्त मस्तक विस्मय से लुप्त हुए गृह  
 विस्फारित सोचन विस्तृत उर, उठी भुजाएँ—  
 सागर लहरों-से बाबा सपटों-से जनगण  
 जीवन धाकासा से लयते स्फुटित-कपित —  
 मधु प्यासा से बेधित नव तक धासाघों-से !

निश्चित दुस्व पठ धावोन्मत्त है नव भावों से !  
 एक गृह्य चट्टान फलक ही नव बेतन हो  
 जीवन की गति से हो उठा धवाङ्ग गुंजरित !  
 रेखाघों में ध्वनित हो उठा मूक ध्वेतन  
 प्राणों के स्पर्शों से बाय उठी चिर मित्रा !  
 धा धनत धीवन धन फूट पड़ा पाहन में !  
 मंथुर जीवन को बंबी कर धिक्काजड ने  
 धमर कर दिया कालचक्र की गति स्तम्भित कर !  
 मूर्त हो उठा नव युग का इतिहास भूत ही !  
 सीमा में निक्षीप धमरता को मृन्मय में  
 बाँध दिया धास्वत को लज में रहस्य धिक्क ने !  
 रूप बड़ गया है धम्प से स्मृत सूक्ष्म से !

(ध्वनि-प्रभाव द्वारा धासा का निरासा में परिवर्तित होना)

किन्तु नहीं यह मान धावना का प्रभाव है !  
 धारम मुह्यता है, माकुं मन बहक रहा है !  
 कलाकार के धांकार तु बाधक मत बन  
 तेरा यह सिद्धुधों का सा उन्मास ध्वंश है !  
 हाथ धमी तो तु धावा ही पकड़ सका है,  
 धमी स्वर्ण-धोपान पार करना है तुम्हको !  
 बिना धिक्कर के पर्वत कैसा ? वह गौरवमय  
 धिक्कर धमी धोम्न है तुम्हने ! साधुत है मन !

शिक्षणी— उधर शिक्ष के कुछ विशिष्ट प्रतिमान पाये हैं जो मशीन हैं संभव इनकी माजिन रशि को सनसे कुछ परितोष मिले ।

एक बर्तक— निरवय ही तेरे निरवय कसा प्रतीकों को अवलोकन करके किसकी छाँवें गुप्त न होंगी ।

दूसरा— यत्प्रभुत कृति है ।

तीसरा— बसो इसर ही से देखें यह याचीजी की प्रतिमा है ।

शिष्या— औ यह प्रसिद्ध दाही बाना के जननायक याचीजी है ।

एक— उन्नत मस्तक पर रोमी बन्धन का जन यज्ञा का प्रतीक सा मंगल तिलक मुद्योमित है शक्ति कर मस्तिष्क उनकी चिर परिचित लाठी है, जो बापू के बुद्ध निरवय सी पागे बड़ने को उद्यत है । दायाँ पैर उठाए स्थिर निर्भय मुद्रा में खड़े हुए वे युग प्रभात किरण से मण्डित मेढ़ सिंहासे सुन्दर लगते—दीपित ध्यान साक जागरण की उज्ज्वल चेतना सिद्धांत । आत्मत्याग के पुष्प चिह्न ही चूटनों तरु की पुगी पहले भारतीय जन निधनता की मित्र भूषा थी—तप-युग वृद्ध स्पर्धित ठन पर लाठी की प्रिय आदर छोड़े साधिरुणा की रत्न जगिना सी दुग्धोज्ज्वल—साम्य मीम्य के देवगुण से निरवय लपटे स्निग्ध हास्यमय ।

दूसरा— शत प्रणाम हम महागुरुग को ।

तीसरा— जीवित कृति है ।

शिष्या— चिन्तन की मुद्रा में खड़े हैं बापूजी हम प्रतिमा में ।

बड़ी लोकप्रिय मुद्रा है यह !  
कसान्यास में टाँगों को घुटनों से मोड़  
ध्यान मौन अंतःस्थित हैं कर्मठ युगदृष्टा  
तेजोमय निर्वर्ति अकंप विना ही तपती  
ऊर्ध्व रेख, अक्षरों के समुच्च दक्षिण कर की  
मुट्टी बँधी हुई, निर्मय सकल्प से मरी !  
निश्चल पमकों पर केन्द्रित एकाग्र दृष्टि में  
स्वप्नित छाया झमक रही सक्रिय चिन्तन की—  
अंधकार को भेद बुझों के क्यों भारत की  
उज्ज्वल भावी बेक रहे हों उदय क्षितिज पर !  
मानव जीवन के दिव्यी-मे तपते धोमिन !

दूसरा—

बड़ी भाव व्यंजक प्रतिमा है ! मुक्तमंडल की  
मौन कांति यमीर मेघ से अन्धविश्व की  
फूट रही है—चिन्ता से आघात किरणों की !  
विश्व बंध गांधीजी का यह अर्थकाय है !  
अनुपम है ! मुखपरचिरपरिचित हास्य रेख है !—  
'छांति हिमाचल की चोटी पर नहीं मिलेगी

तिय्या—

तीसरा—

उसे प्राप्त करना होगा मानव समाज में  
प्रतिदिन के कर्मों में जीवन समर्पण में—  
ऐसा कहने वाले कर्मनिरत बापूजी  
सौम्य हास्य बरसाते रहे विपण्य बरत पर  
धनामल उर का मुख बितरण कर जनमन में !  
निर्मलस्य धार्म्य वस्तुवादी से बापू !

दूसरा—

तिय्या—

तीसरा—

एक—

इधर सड़ गांधीजी सक्रिय हाथ जोड़ कर !  
विश्व रूप में क्यों सर्वत्र विराजमान हों !  
अभिवादन करते हैं हममें से जनगण का !  
यह प्रसिद्ध प्रतिकृति है उनकी भारतजन के  
प्रिय अधिनायक जिस विनम्रता की प्रतिमा से  
यह दृष्टि उसकी मुस्मृति फिर जीवित रखेगी !

जहाँ धर्म बैलों के जनायक हम युग में  
 धर्मरक्षकों से बहुत रहते बिने भिरंतर  
 वहाँ पहिले बापू निर्मल स्वर्ग दूट-से  
 मुक्त बिचरत रहे सगल जनगण समूह में—  
 मागर सहारा-से जो जय घोषों से मुक्ति  
 उन्हें सुरक्षित रखते थे धडाबेलित कर!

दूतरा—

अपराधित व्यक्ति रहता उनका बैबोपन।  
 पावन के कर गए बरा को चरण प्रणत कर,  
 गीतम ईमान-जग को सम्येक से अमर।

शिष्या—

गीतम कुछ उबर शानित हैं ध्यानावधिनि।

एक—

आरमभूत पर, अन्त स्थित ह्य मानम शतवत्।  
 प्रस्तर का बड़ माध्यम भी अन्तश्चयन हो  
 समाधिस्थ हो उठा धार्मि सा भूमिमान बन।  
 पचासन में मीन—अर्धस्कुट गुणन कर कमल  
 स्वर्ग क्या के अर्धपात्र-से शोधित स्वर्णिम  
 बिम्ब प्रीति शान्ताओं की धामानु बाहुर्द,  
 बदना स्तुति बस रहित गुणि सागर सा—  
 अउमोचन उगाति शिल्प-से ऊर्ध्व अन्तहित।

शिष्या—

ये मसीह हैं।

दूतरा—

दिग्गज हृदय साकार प्रम-से।  
 स्वर्ग राज्य के अग्रज भगवन् जीवन की  
 मक्तिमा गरिमा के अर्ध-पुष्पी पर  
 बिचरे जो उरका वनकों पर अमर स्वप्न से।  
 जन भू के कमुरों को हरिकृन्तन दान से  
 पुनस्तान कर मग, धमा न प्रीति द्विज-कन  
 जिस परा उर की निर्मलता की मूर्तों को।

तीसरा—

गोनम न गांधी नर भू जीवन विकास कम  
 बिचरन करना स्वप्न चरण पर नमा वस में।  
 भू जीवी का पुन स्वर्ग बैनना दिया का

बाहक बनना होगा उसको उठा उबलतर !  
यह कबीर का धर्मकाय है !

एक— पूर्ण साम्य है मुखमंडल की रेखाओं में !  
घात क्षम्य मुठ मुठ भी जैसे स्वयं काय है !

दूसरा— अद्वितीय गायक से निश्चय कवियों के कवि  
गुरु रबीन्द्र नव युग इष्टा नव जीवन लब्धा  
धमर कल्पना-युक्त धाम रत्नचूड़ामा स्मित  
सेतु बांध जो गए बरा को भिमा स्वर्ग से—  
स्वप्न मुबार भावों की निस्वर पर बापों से  
छोड़ कर मानव धारमा के नीस मौन को !

तीसरा— अश्मूत प्रतिमा से रबीन्द्र इस युग की निश्चय  
उद्बोधन के गान खेड़ मिश्रित वसुधा को  
नव जीवन घोसा में जो कर गए आनरित !  
मेघ मंत्र गर्जन भर मनुष्यों का गुबन कर  
नव बाणी से गए, सर्वमत समुपलब्ध को !  
राष्ट्र प्रेम का मंत्र पूँक बनमन समुद्र को  
मातृ भूमि के गौरव से कर गए उच्छ्वसित !  
जीवित कला मूर्ति के कविवर !

एक—

शिष्या—

एक—

उपर बेकिए, मौह पुष्प सरबार पटेस विराजमान है !  
कर्मनिष्ठ बापू के सैनिक ! अम्य मूर्ति है !  
बुद्ध प्रतिम मुख मुद्रा अभिमत गठित कसेवर,  
उत्तरीय बिर परिचित मूस रहा कंधों पर  
निस्तूत बस भिसात स्कंध ज्यों पुरुषसिंह हों  
बड़ सामने ! स्मित भयनों में कक्षणा समता  
रूपक रही उर की अंबर में रजत बाण्य सी !  
बटु गवाण पर गौरीचक्र घोषित हैं क्या ?  
के मेरे अभिनव प्रयाग है तिलकमा के—

दूसरा—

शिष्या—

(पात जाकर) चत्र कीमुची की प्रतिमा यह खेद स्फटिक पर !

तीसरा— धोह रजत निर्मलरिषी की उन्मुक्त छाया में  
उमड़ रही या प्राणों की अंचल छाया की  
आपनी ही धोमा में तन्मय लुहिन फेन का  
झीना आँखों पर फहराए यह धिस्व स्वप्न की  
छाया चित्रिका है आधर !

एक—

स्वर्णीय कांति है !

दूसरा—

कूँट के अपसक बिस्मय से स्मित बदन-स्वप्न  
मर्म प्रीति के मुहु भावों से सजता स्फुटित  
बायबीय कल्पना भूर्त हो उठी धिमा में  
स्फटिक पाष में बंधी स्वप्नों की उड़ान हा !

तीसरा—

मुक्त कीमुची को निज पुसकित बाहु परिधि में  
मरण को उन्मुक्त यह हंसमुख चंद्रदेव है !  
सगता है मानो नव आकांक्षा का तन घर  
भूर्त हो उठा हो अनन्य सदा यौवन में !  
अर्धभूदे नयनों में स्वप्नों का सम्मोहन  
स्फुटित बदन-स्वप्न में तारापथ का वैभव  
अंगों में बिभ्रित हो तन्मय मीन पूजिता—  
आमा अस्ति सी कला मुहाती प्रिय मस्तक पर !  
गोपीरांकर ही जैसे नव कला स्पर्श से  
चत्र कीमुची के प्रतीक बन गए हों अनर !  
रिप्य मुष्टि है !

एक—

बह क्या राधाकृष्ण है कुसल ?

शिल्पी—

आप टीक कहने हैं लोगों प्रथम दृष्टि में  
राधाकृष्ण सद्गुण सगता है जैसे मीन  
मेघ बामिनी की माहृद पावस धोमा को  
मूर्तित करने का प्रयास है किया धिस्व में !

दूसरा—

मौलिक निरय-अमीन कल्पना है यह निःशब्द !  
मीन बिभ्रित मेघ कृष्ण का सगता सुंदर,

बापों की बहुराई रेखा पीत बसन छी  
इत्रबाप का प्रेम बीजता मोर मुकुट सा  
मस्तक पर घोमित ! गभीर उबार मेघ छवि  
माव साम्य रखती है प्रभुत बनस्याम से ।  
प्रथं निमीलित सोपन कुचित उल्लास अमक  
कवचा विगमित धनर, सोभा निर्भर बाह  
नील गगन की धृष्टभूमि में उमरी आकृति  
अनुपम लपटी है !

तीसरा—

बारिद के उर से निपटी  
धुमक सता छी आभा बेही प्रठनु दामिनी  
यी राधा छी उल्लास लगती कृष्ण प्रेम में !  
अंचल अंचल जिसक उल्लासित बस-स्वत से  
छाया सा निपटा है जन के कटि प्रदेश में ।  
एक— स्वप्न सृष्टि है !

दूसरा—

धिल्लकसा का चमत्कार है !

चिन्ती—

पूर्व चंद्र सागर बसा की प्रतिमा है वह,  
बाम पार्श्व में !

एक—

मूर्तिमान प्रेमाकर्षण है !

उमड़ रही उद्दाम मीन सागर की बेसा  
नव बीजन की अंचल सोभा में हिलोमिलित  
आकुल बाहिं उठी मुक्त भावना उबार छी  
बुर्ज चंद्र को बंधी करन बाहुपास में !  
धृष्टदेश पर लहराए जन कोमल कुतल  
फलों के स्मित फूलों की भासा से मुचित  
जनप्रसार सा फैला जन अंचल अंकुश व्यो  
धनर तट धूने की भासा से उल्लित !  
अर्धसुप्ते आकर्ष मीन सोपन है अपलक  
भू रेखा में चपल अंगियां भागो स्तम्भित —  
स्वीतजन में अतल सिन्धु ही प्रीति उल्लासित ! ..  
पूर्व चंद्र मुसकुरा रहा है, विजय बर्ष से



- रश्मिपाद्य में बाँधे उम्माद का प्यार को  
 उम्मुक घघरों पर नीरव बुँधन प्रकट कर !
- दूतरा— शक्ति स्फूर्ति की घोडन है सप्राण मूर्ति यह !
- सीसरा— वह कोने में एकदम है बिज्ज बिनायन !
- दूतरा— परिचय देना स्वतः गजदहन प्रजन रूप सा !
- एक— घड़ा हथर घोषित है मनमोहन मुरसीवर,  
 मैं इनका ॥ लाज रहा था ! बेसी स्वर्णिक  
 मध्य मूर्ति है ! धिक्कता भी बस्य हो उठी !  
 मार मुकुट मस्तक पर धबधों में मकराकृत  
 प्रिय बुँधन जो माँक रहे कुचित घसकों से  
 सुधर नासिका घबरमधुरस्मिति रक्त-म लिले  
 बुपम स्वयं पीतावर स भूषित नीरव तन !  
 कस्या विस्तृत उर म भूम रही बनमासा  
 मधु क्यासा ने रोमाचित गलबाही दी हो !  
 केहरि कटि स्थित घष ऊर्ध्व विरसों के टट पर  
 महुलोक सी घासा स्तनों सी जंपाएँ—  
 बरनों में बज उगनी स्वबिम्ब पायस निस्वर !  
 सुवन मोहिनी है बिजंग भूसा बिलोकमय  
 यों मकप जतना हो उठी भूनिमान हो !  
 प्रीतिपाद्य सी बहि विरंक मुख के उम्मुक  
 उगी हुई, प्रिय बतपाँ घ बट्टित प्रकाण्ड मूहु,  
 नव कमलों-से मुगस करों के धर्य प्रस्फुटित  
 प्रभुति हन म धाम नीरव भीहक मुरसी—  
 माहून मुग्गी जिसके गोतन गकड़ा पर  
 मुग्ग प्रवृत्ति सजन करनी बलितम में भनित !
- दूतरा— मोहन की मुरमी प्रनीत है घमर राग की—  
 वह सम्मोहन जगधरों का बाँधे है जा  
 घपने निर्मम स्वर्णपात्र में बिजय मुग्ग वर !
- एक— धि धम करना चारुया दग मध्य भूनि को !
- दूतरा— धरि गुह है प्राय !

## नाटक

शिल्पी—  
तीसरा—

प्रसन्न हुआ मैं मिसकर !  
पृथ्वी के पुष्पों के फल सा शुभ स्फटिक का  
एक मनोरम देवासन सज्जित स्वर्ण सा  
धेयिष्ठ पुत्र मे बमबाया है इस प्रदेश में  
अमरा के भारोहन पथ सा स्वर्ण कसघ स्मित —  
कीर्ति स्तंभ सा स्थापित जो मगध महिमा का ।

एक—

शिल्पी—  
एक—

मुरलीधर की दिव्य मूर्ति की शुभ मुहूर्त में  
प्राप्त प्रतिष्ठा होगी उसमें समारोह स—  
मैं सचिनय आमंत्रित करता वही आपका  
शिला कोण से प्रकट किया जिसने ईश्वर को ।  
मैं सहर्ष आऊँगा उस मंगल अवसर पर ।  
प्रभु की इच्छा से प्रसिद्ध हो और आपकी  
शुभ कीर्ति से आकर्षित मैं पुष्प बड़ी में  
गृह से निकला मुरलीधर की मूर्ति लावने ।  
धन्य हो उठा आज आपकी अमर कला की  
स्वयं सृष्टि को अभित कर इस कला कला में ।  
स्वीकृत करें कृपापूर्वक जय तज मंद यह  
इस अमूल्य निधि के बचने—

शिल्पी—

एक—

शिल्पी—

तीसरा—

हस्तकृत्य हुआ मैं  
आज आपके अद्यावधिक मधुर बचाना से ।  
मन मस्तक मेरा प्रणाम स ।

हमको भी आशीर्वाद है । जय के लिए  
आज महत् प्रणाम मिली । हम बिरहकुतल हैं ।  
शिल्प कला की प्रगुल बरोहर हैं व इतिमा  
थी अकमूल्य सौन्दर्य आपन मूल्य दिया है  
इस छोटे से निम्न कुंज में—निजिल निजल के  
घंटर का अलय बैसल अभित कर धन से ।  
निमग्न पापापी के उर का प्राणवात कर

उनमें जीवन फूँट दिया जाऊ क हा से—

धिसा हृदय में स्पर्श बैठना का कर जाग्रत !

सीतल—

मूर्त कर दिया भाव स्वप्न प्रसन्न पसका पर

मप बैठना से झड़त कर निस्वर अङ्ग का

पग्य आपके अमर निरु को !

शिखी—

(हाथ जोड़कर)

उपहन हूँ मैं !

(बसकों का प्रस्थान)

## द्वितीय दृश्य

[विजयानन्द मन्दिरमन्दिर के बाहर का मुख्य मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा सम्पन्न हो चुकी है। संध्या का समय मंदिर आरती के समयों से जगमगा रहा है बाहर का प्रयोग प्रतिनिधियों से जगमगा रहा है। संध्या-वालों के साथ कीर्तन चल रहा है।]

### गीत

जय मुरलीधर, जय राधाधर  
जय गिरिधर बनमासी  
जय जन मन बनमासी।

गुणित गीत मुरली के स्वर  
कपित धर धर धर धर धर,  
गुणित गीत सब मुख धरधर

तुल्य तब दन तामी  
मनमोहन बनमासी।

स्वप्न मंदिरित जन मन मधुवन  
अपलक लोचन के बाधायन  
मर्म प्रीति मर्मर स धनुषधर  
रोमांचित धर धर धर  
रक्षम मित्र बनमासी।

निस्तल प्राणों का यमुना धन  
हृदयों की सहरे उच्छ्वस  
भूवा मन का कहुँ न बचल

मनो बाधना कामिध  
मेघ धरधर बनमासी।

पीतांबर द्यवि द्यामल तन पर  
स्वर्ग रेख सी कसी निमप पर  
नील गगन स लिपटी बुदर

प्रथम उपा की तासी  
पीठ बसन बनमानी ।

जय धर्मन जय शास्त्रत प्रसर,  
जय जलपर कोमल कलनाकर,  
बग्न रहे प्रखर रस निर्मल

जय धनुमिठ यमघाभी  
दीप्य बनन बनमानी ।

एक प्रतिधि—जसा मध्य प्रयोग कला का वेवहार यह  
मीन प्रार्थना सा पृथ्वी की उठा गगन को—  
बैसी ही बीचत मूर्ति है मुरलीधर की !  
जिनके पावन दर्शन से इस महाभूमि का  
जीवन का धीरे स्रष्टा घाँटा के समुद्र  
पुन उदय हो उगता फिर प्राचीन घनस्वर ।  
बहु बीज का युग हाया निरवध मारत का  
जिसमें कल्पित हुआ पूर्ण अविनश्य कल्प मे  
महापुरुष का ! उस युग की समस्त थी गोमा  
भक्ति ज्ञान दर्शन की धर्मुक्त महिमा करिमा  
निजिमा रहस भावना कला कीजल का बीजक  
मूर्तिमान हा उठा कल्प के दिव्य रूप मे ।

दूतरा—

धभी मुनाई पड़ती जेमे बहु बची ध्वनि  
निमृत् निमृत् गिरि पहनों मे मर्मर भरती  
ममुना की आशुम सहरो मे मधु मूसरिण हा  
निर्जन छाया बीधी पक्ष मे जन मन हरली !  
रहस प्रीति की निराल धारा बहनी हाणी  
तब इस भू पर उर म रम के धमर शोन दन  
भुग्ने हांग जन जन को निरिमल विमुक्त कर ।

पूर्ण समन्वित होगा उस युग का नू जीवन  
विषय समुत्पन्न होगा भावों में कर्मों में !  
निरव विमोहन मुरझीवर की धमर कल्पना  
मोहनेनना की धारवत प्रतिमिति है निश्चय !

तीसरा— काम क्रोध से कुण्ठित भवतृष्णा ने कुठित  
ध्यामा को कर मोहमुक्त मुरझी की धनु ध्वनि  
को नित ध्वनितम मे निस्वर वृत्ति रहती —  
निज योपन धाकपन से मानव ध्यामा को  
सगत उठाती रहती स्वमिक सोपानों पर  
मूदम भाषना के नम में सन्निधानमय !  
मुरझीवर के धीवरणों पर ध्यामार्षण कर  
ध्याम वृत्तियाँ हो जाती कामिय सी मवित  
ज्ञान दग्ध हो जाता सन्निव कर्मों का फल  
मलिन भाषना से विमुक्त हो उठता धमर !

चौथ— मनोभूमि पर उठरे थे धी राम मनुज की  
मनश्चेतना को विवेह कर वेह नीति से  
मर्माधारै नीति नीति की सहाचार की  
पक्ष प्रशस्त कर दण जनों का मोह निघा में  
इन्द्रिय प्रस्त तमस की—जीवन की छाया का  
ऊर्ध्व मनुज के चरमों पर कर दण विमुठिन !  
जन के प्राणों के स्तर पर धनतरित हुए थे  
सीमामय धीकृष्ण भाषना के समुद्र को  
मंथित कर सासदा चपल भागस पुमिनों को  
निस्तल मज्जित कर, ऊर्ध्वग जीवन घोमा का  
मक्ष प्लावन भर गए चरा में—मधुर भाव में  
भक्ति प्रवित कर, रण प्रवाह में बुवा जयत को !  
योदेस्वर ध निरचय पुण्योत्तम रहस्यमय !

(बीतर के प्रागन से संगीत के स्वर धाते हैं)

## शिरपी

## भाव गीत

यमुना तट पर नट नागर न

कैसी बैणु बजाई  
प्राचीं में ध्वनि छाई ।

धनु चराने में बन घाई

मुरमी की पुन पुन मधुमाई

बूब ही मानम यमुना तट,

प्रीतिपार सहछाई प्राचीं०

मधु मजरित हुई उर डानी

कक उठी होयन मठवासी

निहरी दह सना स्मृति पुनबिठ

प्रिय छविरी मन भाई प्राचीं

जान बब भर पाए मोचन

बिबर मया मुषि बुधि उगमन मन

विने त्याग धन यमुना जल म

छाया सी गहराई प्राचीं

शिव न जह पग ब्रून गया मध

गया जाने क्या मोचेगा जग

मगनी के दर में सी निरखर

निम्नम ध्याना लमाई प्राचीं०

बंसी की ध्वनि का मधुमोहन

लमक लई धामी मन ही मन

यमुना तट की प्रिय बटना पुन

नर मधुर मुमराई प्राचीं

जन मन माहन ही मुरमीपार

मधे प्रीतिमय मधु मुरमी दर

पारन यमुना तट बली बर

प्रिय न बुद्ध बर पाई प्राचीं०

बाँधनी—

प्राण एक पल्लवारे से इस देवालय में  
गायन वादन कीर्तन है जन रहा निरंतर,  
एकमिह हो रहे उमड़ अभिराम झोठ में  
भक्ति प्राणजन पुष्प स्नान करने उत्सव में।  
धरा से प्रेरित हो मार्गों से उद्दमिष्ठ  
सस्मित ध्यान स्वर्णित अंतर, हृषित सोचन  
मुरसीधर के दर्शन ने पावन दर निज मन  
झूठा रहे सुख कुछ उर उर के रहस्यमिसन में।  
निश्चय जन मन में अजेय विश्वास छिपि है  
मत्त मस्तक हो उठते जिसके सम्मुख पर्वत  
हुस्तर बबसागर में जिसका सेतु बाँध कर  
पार मनुष्य होते बिम्बों के भृंग जीव कर।

कटा—

युग युग से करते आए जन कीर्तन बंदन  
युग युग से सुनते आए मुनियों के प्रवचन—  
धिर रहस्य में लिपटे धार्मिक उपदेशों के।  
किंतु नहीं कुछ बबल सदा जनगण का जीवन  
ईश प्रविष्टा अंधकार के अतस गर्भ में  
बैठा ही झूठा है जन मन—अंधनियति का  
घास बना निर्मम बिबि की हठ्ठा पर निर्भर।  
सगता है, प्रतिमा पूजन मृत आदर्शों का  
पूजन भर है भर्म गीह कुबंज जन जिन्को  
दर से धिपकाए हैं स्वर्ग नरक के मय से।  
संस्कृति और कला के जीवंत प्रतीक मात्र जो  
उन प्रतिमाओं के सम्मुख मत्त मस्तक होना  
अपमानित करना है मानव की आत्मा को—  
अपने घटवासी ईश्वर के प्रति सशंक हो।  
कोई भी आदर्श नहीं जो पूर्ण चिरंतन  
इस परिवर्तन धीन जनत में जहाँ निरंतर  
मनुष्य बनना विकसित बड़िग होती रहती  
प्रति युग में अपने यत् जीवन को प्रतिष्ठा कर।



सातवीं—

यन्तु परिवर्धितियों की ही गंभीर वेतन  
 जिसपर जीवन धूम्र विरिक्त धवनविधित करने  
 और प्रतिक्रियित होनी जो सौन्दर्य बना में —  
 वह मानव के अंग में धारकों का म  
 न्य ग्रहण कर लेनी अंतः संयोजित हो  
 बाह्य परिस्थितियों में जब परिवर्तन धार  
 जीवन मन के मान धारित करने युक्त  
 इसीलिए धारकों जो कि नैतिक सत्यों  
 मूर्त रूप हैं परिवर्धित होने अतः निम्न

पाँचवीं—

धर्म सत्य यह यन्तु पक्ष ही नहीं प्रथम  
 भाव पक्ष भी—जिसमें धारण है समस्त जड़  
 अपने ही उर की धारण में ठोकर पीट कर  
 मानव न जाना है इस जड़ यन्तु जगत का  
 उसको निज धर्म प्रकाश में भाव इवित कर  
 धारणा के अन्तों में लोभा विलिन कर  
 गर गर गर वाली उस मूर्धन धर्मों धर्म का  
 प्रवृत्ति नहीं कर जाना जब साधारण का मन  
 प्रणिमा पूजन का महत्त्व इतिहास तथा  
 बना रहेगा जब जब म जय के जीवन में  
 विधायक दृष्टि में नैतिक धार्मिक धर्मों का  
 प्रणिमा ही है गोपनीय मित्र होने में

छठा—

धर्म धर्म क्या ? इन स्वर्णीय धर्मों के अन्तः—  
 प्रणिमा पूजन के महत्त्व पर धारणा मन  
 स्वर्ण समान कर धार ही इस विचार की

शिल्पी—

जड़ प्रणिमा ता मान धार का बना रूप है  
 जीवन के प्रति धार मानव के प्रति धार  
 आर्थों के प्रति धार मही प्रभु का पूजन है

मन्द रूप में बही व्याप्त है निश्चित जगत् में  
 मानव का मन ही उसका पावन मंदिर है।  
 उसे स्वच्छ सुंदर रखना जगत् माओं के  
 भुमनों से श्रुति करना उर की इच्छा को  
 प्रभु को अर्पित करना ही मानस पूजन है।  
 परा शक्ति की ही प्रतिमा है मृत प्रकृति भी  
 सूर्य चंद्र तारे जिसका भीराजन करते  
 सागर जिसके पावन पद प्रक्षालित करता  
 संघ समीरन जिसे झुलाता मंद व्यजन मित्र  
 पक्ष पशुपति जिसकी परिक्रमा करती मंदत  
 रंग रंग के फूलों की ध्वनि स्नेह भेंट कर,  
 ध्यान मीन रहते गिरि, भविष्य गाती महिमा—  
 उस निसर्ग की मधुर मूर्ति में दिव्य शक्ति के  
 निरव रूप के दर्शन करना ही पूजन है।  
 एक बेतना शक्ति व्याप्त वह जीवन मन में  
 विविध मोड़ घाटन उसी के महान् दुर्गों के  
 मूर्त रूप हैं—जब जीवन के पोषक पूरक।  
 भी योगा ध्यानमयी वह सुबन शक्ति ही  
 निरव प्रसरित होती रहती सब रूपों में—  
 विरव विबाही संवसमयी धर्मत बेतना।  
 यही सत्य है युग परिवर्तन की बीड़ा का  
 यही सत्य जीवन की निरव अभिनव सीमा का।  
 फिर विकास प्रिय फिर सन्ध्या है जब जीवन की  
 समर बेतना ओ युव युव में सब रूपों में  
 धर्मव्यक्ति पाती जगती के व्यापारों में।  
 देव जाति यत् मूल प्रकृति का अनुशीलन कर,  
 बन्धु परिस्थिति के अनुकूल हों जब युग के  
 आवधों की प्रतिमा निर्मित करनी होनी  
 बाह्य विरोधों में भर धैर्य साम्य समन्वय।  
 धर्म हो रही धाव मान्यताएँ युव युव की

नीचरी—

सातवाँ— बस्तु परिस्थितियों की ही मर्यादा केतना जिसपर जीवन मुख्य निर्मित धर्मोन्निष्ठ रहने और प्रतिफलित होती जो शीघ्र ही बना में — वह मानव के संसार में आदरों का भी रूप ग्रहण कर लेनी संत-समाजित है ! बाह्य परिस्थितियों में जब परिवर्तन आना जीवन मन के मान बदलते रहने मुगल-इसीलिए आदर जो कि नैतिक सत्त्वों के मूल रूप हैं परिस्थित होने रहने निर ।

पाँचवाँ— धर्म सत्य यह बस्तु पक्ष ही नहीं प्रबल है भाव पक्ष भी—जिसने धातु है समस्त जड़ ! अपन ही उर की आदर में ठोकर पीट कर मानव ने हाता है इस जड़ बस्तु जगत् को उसको निज संत-प्रकाश में भाव इन्निष्ठ कर आकाशा के स्वर्गों में शोभा कल्पित कर ! पर बट बट बासी उस सूक्ष्म समूर्त सत्य को ग्रहण नहीं कर पाता जब साधारण का मन प्रतिमा पूजन का महत्त्व हमलिए सदा ही बना रहेगा जब मन में जगत् के जीवन में ! विद्युत् दृष्टि से नैतिक आध्यात्मिक सत्य भी प्रतिमाएँ ही हैं सापेक्ष सिद्ध होने से !

छठा— धातु मूल क्यों ? इस स्वर्गीय मूर्ति के अष्टा— प्रतिमा पूजन के महत्त्व पर व्यपत्ता मत है स्वर्ग समापन करें धातु ही इस विवाद को !

शिल्पी— जड़ प्रतिमा तो मात्र भाव का कला रूप है ! जीवन के प्रति यज्ञ मानव के प्रति आदर, जीवों के प्रति स्नेह यही धर्म का पूजन है ! यह समस्त समृद्धि ही ईश्वर की प्रतिमा है

मार रूप में वही व्याप्त है निश्चित जगत में  
 मानव का मन ही उसका पावन मंदिर है।  
 उसे स्वच्छ सुंदर रखना उन्नत भावों के  
 मूमनों से भूयित करना उस की इच्छा की  
 प्रभु को अर्पित करना ही मानस पूजन है।  
 पराशक्ति की ही प्रतिमा है भूत प्रकृति भी  
 सूर्य चंद्र तारे जिसका गीतावन करते  
 सागर जिसके पावन पद प्रक्षालित करती  
 गंध समीरन जिसे झुलाता मंद व्यजन मिल  
 पद् अंगुलि जिसकी परिक्रमा करती पतंत  
 रंग रंग के फूलों की अंबुसि स्नेह भेट कर,  
 ध्यान मौन रखते मिटि, नदियाँ घाटी महिमा —  
 उस निरुपे की मयूर मूर्ति में दिग्ग शक्ति के  
 नित्य रूप के वर्णन करना ही पूजन है।  
 एक चेतना शक्ति व्याप्त वह जीवन मन में  
 विविध मोड़ घावों उसी के महान् गुणों के  
 मूर्त रूप हैं—जग जीवन के पोषक पुरक।  
 भी शोभा धारणमयी वह सृजन शक्ति ही  
 नित्य अनवरित होती रहती नव रूपों में—  
 विरह विधात्री मंगलमयी अमृत चेतना।  
 यही सत्य है युग परिवर्तन की बीड़ा का  
 यही मत्स्य जीवन की नित अभिनव मीमांसा का।  
 विर भिकास प्रिय विर सक्षिप्त है जग जीवन की  
 धमर चेतना जो युग युग में नव रूपों में  
 अभिव्यक्ति पाती जगती के व्यापारों में।  
 रोग जाति मत मूल प्रकृति का अनुशीलन कर,  
 मत्सु परिस्थिति के अनुकूल हों नव युग के  
 आवसों की प्रतिमा निर्मित करनी होगी  
 बाह्य विरोधों में मर अंत साम्य समन्वय।  
 ध्वंस हो रही आज मायवशा युग युग की

पाँचवीं—

निकल रहे फिर सूक्ष्म धिप्पर नव धारकों के  
सूजन प्राण मानव मन को उनके प्रकाश को  
मूर्तिमान करना होगा नव युग जीवन में—  
मानवीय सस्मृति से संयोजित कर उनको  
युग विप्लव में नव्य संवरण को सचेष्ट कर !

शिल्पी— यही प्रश्न है धाव कसा के सम्मुख निश्चय  
जो बुझाध्य प्रसीत हो रहा कलाकार को  
बहिरंतर की अटिल विपन्नताओं में उसको  
नव समत्व भरना होगा सीम्हर्य संतुलित !—  
मानव उर की बंधी में नव स्वर संमति भर  
भावपूर्ण कर निहित धमाकों के जीवन को ।  
नव्य सूजन की कुण्ड व्यथा से पीडित कब से  
कलाकार का हृदय विप्लव है नव जीवन की  
प्रतिमा प्रकट करने को सर्वांग पूर्णतम—  
अनयुग की निर्मम पापान धिला के उर में !—  
महत् प्रेरणा का आकांक्षी है युग मानव !

पाँचवीं— कलाकार के योग्य महत्वाकांक्षा है यह ।  
धाव विप्ल के कोने कोने में आवृत्ति की  
सूक्ष्म अक्षिणी कार्य कर रही जन के मन में  
जो प्रच्छन्न धमी है निश्चय ही अभिष्य में  
नव्य चेतना बिचर सकेगी जन धरणी पर  
नव जीवन की घोषा परिभा में मूर्तित हो ।  
व्यर्थ मनुज बाहर के घर में उसे सोचता  
संतुल्य में जोत दिया जो अमृत समय का  
अंत ससिला धारा ही में प्रवगाहन कर  
गुप्त मपीशिका से विमुक्त होगा मानव मन—  
आवाहन करती नुस आरमा नव प्रकाश का ।

गीत

नव प्रकाश बन आओ !  
 जीवन के नम धंधकार को  
 ज्योति ब्रवित कर आओ !  
 अंत स्मित हो मानव का मन  
 छांत विरह जीवन संदर्पण  
 नव स्वर सहरी में जन ध्रु का  
 अंजन करन बुझाओ !  
 छाया मृत आदरों का तप  
 छाया बह भीतिवन्ता का भ्रम  
 अंध भीतियों में जन मन की  
 नव किरणें बरसाओ !  
 धृणा डोप को भीति ब्रवित कर  
 महानाथ में समूह सवित कर  
 अविश्वास को फिर प्रतीति में  
 परिणत कर मुसकाओ !  
 विरह प्रानि में नम्य रूप भर  
 भी घोना स्वर्णिम समल्य भर  
 जन बरणी में जन जीवन में  
 मन का स्वयं बसाओ !  
 शून्य बेणु तर में नव स्वर भर  
 भूक ध्वजा हर, नव मुरली भर,  
 अभिनव भी सुपमा गरिमा में  
 बरणी को सिपटाओ !

## तृतीय दृश्य

[सिम्ही का कला-कस सिम्ही पदों की छोट में अपनी संपूरी प्रतिमा का निर्माण करने में संलग्न है। उसकी सिप्या एक धीरे-धीरे हुई हथियारों में बांधा हुआ है।]

सिम्ही— (प्रतिमा का निरीक्षण करते हुए)

मई सम्मता जन्म से रही धातु धरा पर  
 लुप्त विमेषों प्रसिद्ध निषेधों को जलती के  
 पुनः संवर्धित संवर्धित कर जन संवर्धित हित  
 नव भू जीवन के मांसस घोषा सौष्ठव में।  
 उन्नत हो रहा धरणी का उपवेदन  
 मरज रहा युग सांशोन्नत जन जीवन सापर  
 नव धातुप्रकाश के धिसरों में लहरा कर,—  
 प्रथम मग्न करने जड़ धरणी के पुंसियों को।  
 शीघ्र रहा मूल्य वेतना के गुणों में  
 धंस हो रहा विमल मन-समलन मनुज का  
 भू भुक्ति हा रहे सीध गत धातुओं के  
 क्षिप्त मिन्न हो रही रीति नीतिमा युगों की  
 दूट रहे विश्वास धन तारों से हृत्प्रम  
 विगत युगों के मान बिज की मिटा बरज के।

येने विश्वजाति के युग में अंतर्गत म  
 लोभनिर्मय धरणी की रेखाओं से धरित  
 एक मनोरम विषय भूति प्रस्फुटित हो रही  
 नव मातों की स्वर्ण धुप्र घोषा में बधित।  
 जन मन के स्वप्नों से बधित उसके प्रवयव  
 निश्चित विषय की प्राकट्याधों से स्पष्टित उर,  
 प्रीति धीन निस्तन कवना से धरित विमोचन

भात सौम्य आनन थी—जिसकी पावनता के  
 समूत स्पर्श से पीपित हो उठता जीवन-तम !  
 फिर कस्मात्तमयी आमावेही वह पीरे  
 प्रकट हो रही घंजरिस में अतर्मन के  
 नभ जीवन की महत् कल्पना थी मूर्तित हो—  
 निखिल विषमतापार्थ भरने स्वर्ण समन्वय ।  
 सिखा फसक में दंकिट करना आज दिव्य को  
 रहिम रेल उस नभ्य चेतना की प्रतिमा को  
 भूमय धनों में संवार दृग सुदम स्वप्न को ।  
 किन्तु हाथ यू जीवन की निर्मम वास्तवता  
 जीम नहीं या रही मनुज आत्मा का वैभव  
 मिट्टी की जड़ता विरोध करती प्रति पद पर  
 नभ प्रकाश के घोमा स्पर्शों के प्रति निद्रिश्य ।

शिष्या—

कुंठित हो उठती फिर फिर उद्भात कल्पना !  
 आप ध्वज उद्विग्न हो रहे अपने मन में—  
 ममा कौन थी वह विषम कल्पना रही है  
 जिसे आप साकार नहीं कर सके दिव्य में  
 अपने कला कुण्डल हाथों से ? सदा सुदम से  
 सुदम भाव भी ममक उठे प्रस्तर के मुख पर !  
 मैं कहूँगी मैं आप हृदय की जड़कन को भी  
 प्रस्तुत कर सकते पाहन में प्राण फूँक कर !

शिष्या—

एक बार फिर से प्रयत्न कर बर्षू बेटी  
 बस प्राण पाहन यह संभव इषित हुआ !  
 गुग गुग के जड़ सस्कारों में जड़ीमूत जो  
 जग यू के निश्चेतन का निष्प्राण सिखा तट  
 जिसके धनु परमाणु बँबे निर्मम बनत्व में  
 गत सम्भासों के निद्रिश्य भालस से मूर्तित—  
 नभ्य चेतना के सन्धिय स्पर्शों से उसको  
 पुनरुज्जीवित करना है नभ मनुष्यत्व में ।  
 (फैली सेकर शिला को गड़ने में व्यस्त हो जाता है)



## गीत

जन भू पर उठरो !  
 युग मन की वापाव धिमा को  
 ककना इवित करो !  
 बुधा ह्ये है पीडित भू जन  
 ईश्वर निराशा से दुःखित मन  
 युव विपाद को चीर, किरणमयि  
 अंतर में निखरो !  
 स्वप्नमयी बिहँसो पलकों पर,  
 भावमयी बिससो नव तम बर,  
 नव की सुपमा में मूर्तित हो  
 चिन्मयि अयि बिचरो !  
 जगतीं मन में छवि रेशाएँ  
 कर्मती अ्यों छत कीप बिजाएँ,  
 जय जीवन की बाहों में बँध  
 घर का सुख करो !  
 सोनी हे मुक्त का अक्षमुक्त  
 कबसे अपलक तकते भोजन  
 धनकारभय पथ ब्योहित कर  
 नव पथ बिहूँ करो !  
 नव प्रतीति में कर उर भुक्ति  
 नव धाधा से जन मन नुसुमित  
 भू की बड़वा को जेतन कर  
 जग का भास हरो !

शिल्पी—

(अतिमा को ध्यानपूर्वक देखते हुए)

आह अंत में कृष्टि धून्य पाहुन पलकों पर  
 मूर्त हो उठ्य स्वर्ण स्वप्न मानव अंतर का !  
 धनपथ की रेशाओं में साकार हो उठ्य  
 मानव मानव का मानव सौख्य पाहुन पलकों पर !

मलक उठी जग मागवता की मध्य कक्षना  
बिस्मय अपमन्य वृक्षपटी में मूर्तिमान हो ।  
यू जग का उज्ज्वल मधिर्य घाँटों के समुक्त  
उदय हो उठा नीर युवों का शय्य यावरन ।  
स्वर्गिक भी सुपमा में हो अवतरित शिखा पर  
मातृ कल्पना में उबीर कर दिया दुष्म को ।  
ईश्वर, मेरा स्वप्न मनोरथ पूर्ण हो गया ।

शिष्या—

(मूर्ति को बैठकर साक्षात्)

आग उठा पापाप हृदय जीवन-नेतन हो  
मुक्त युग का बह मोन हो उठा मति से मुक्तित ।  
कैसी भीषित भावपूर्ण प्रतिकृति उठती है  
दर्पण पर विस्मित हा उठत निबिम्ब वृक्षपट ।  
शिष्यकला निज चरण शिखा पर पर्वण मई है,  
प्रस्तुत वह आदर्श निवर्धन मूर्तिकरण का ।  
पट का बह व्यवधान हटा यू यव प्रतिमा से ।

(पर्चे की हवाती है)

कलाकला हो उठा नवम गौरव से मंडित ।  
मो मुहूर्त क्यों देल भा रहे दर्शकगण भी ।

(दर्शकों का प्रवेश)

एक—

अभिवादन । क्या पूर्ण हो गई कला सृष्टि बह ?

शिष्या—

उत्तर बलित, कलाकला के मध्य भाग में  
शीत धिक्कर ही शिष्यकला के पंच मार कर  
उड़ने को उद्यत है नव नेतना स्वर्ग म ।  
मैं अब तक संवरण म कर पाई निज बिस्मय ।

दूसरा—

आप सत्य कहती हैं 'यह आश्चर्य है' यह  
शिष्यकला का । मुक्त दृष्टि धर्मियेय हो उठी ।  
जग मन का छागर ही जीवन हिस्सागित हो  
घनीभूत हा समा धर्मौक्तिक वृक्षपटी म ।

यति से अद्विगत यति से स्पर्धित सगता पाहुन  
 अद्विगत यति ही सूरभ रूप हो जैसे बड़ का ।  
 मीन हाट भग रहा मुझ पर जीवन धोमा का  
 युग आवर्षी से आन्धामित रागती प्रतिमा !  
 बीज मुझा पर खेत रहे दान भाव हृदय के  
 बूढ़ भगों से फलीभूत सी क्षति स्फूर्ति नव ।  
 फूट रही युव जीवन की आराज्यागाएँ  
 जगज्ज के आनन से नव गरिमा मंडित हो !

(अनारक)

शिष्या— धर, कौन सा रहे इसर अधिकों दुपका के  
 जननामन-से ? हृदय छाति का कल्पित करन  
 कूट पुकारों से—

शिल्पी— उनको घाने हो बटी ।

(अन-समूह का प्रवेश)

एक स्वर— हम मू की संगठित क्षति हैं हम बण्डी की  
 क्षति भरी उठती पुकार है, हम देखेंगे  
 आप यहाँ स्वप्नों के सुन्दर गीढ़ में छिपे  
 कौन महत् निर्माण कर रहे जनगण के हित ।

दूसरा स्वर— मध्य वर्ग की या अतृप्त वासना पूर्ति के  
 धर्म मन्त्र कुत्सित शृंगारिक चित्र नइ रहे ?

तीसरा स्वर— कुछ बर्ग है जर्जर जब जनमन का जीवन —  
 कलाकृत में बैठ, निभून कल्पना स्वर्ग में  
 आप व्यस्त है मध की सिप्ता से प्रेरित हो  
 निर्धन बड़ पापानों को कल्पित करने में  
 आरम भाव रत भीषित जनता से विरक्त हो !  
 मजुर व्यक्तों से कर अपनी उदर तृप्ति दित  
 आत्मा के हित जाच खोजते आप निरन्तर,  
 क्षति कसाओं से पोषण कर अपने मन का  
 संस्कारों की धोमा में उसको सपेट कर ।

दूसरा स्वर— किंतु, धन्य उपजाते जो हम भरती से सड़  
मरते वहु प्रासाद भवन, करम म सन कर  
हमें चाहिए क्या न मयूर भारमा का भाजन ?  
भुषापूर्ति करते हैं यदि हम सम्य जना की  
उन्हें चाहिए, भाव पूर्ति के करें हमारी —  
हमें सम्मता दें वरसे में और कला की  
जन उपजायी मयूर देन से जन के मन की  
नव जीवन शोभा में वेष्टित करें ! किंतु, उक्त  
धन्य वरम का भी प्रभाव है हमको ! यद्यपि  
हम ही धपन मुजबबन से उत्पन्न करते  
भाति स्वेद में लपपध पासन करत बग का !  
यही सम्मता क्या इस युग की ? यही न्याय है ?

तीसरा स्वर— कहाँ सोचते न्याय यहाँ ? हम जो भरती के  
प्राकृत शिल्पी हैं जो भू के निर्मम उर को  
जीवन हरियाली में प्राण प्ररोहित करत  
धपने धनपद कर कौशल से — इस को हम ही  
जन मन के शोभा शिल्पी भी होने निश्चय —  
हम में उपजने वाली स्वप्नों के सप्ट, नवल  
प्ररणा स्वप्नों से रोमांचित संतर, —  
नव विकसित मस्तिष्कों हृदयों के बीज से  
परा नतना को उर्बर करने में सक्षम !  
मोक्ष नियति निर्मावध जाहनु कलाकार जन  
हम वरिष्ठता को कर बेग भू निवर्तित !

चौथी— यही अनोचित स्वाभिमान है कला नेतना  
नाक आधारन की नज से कर रही प्रतीक्षा !  
कला यही तक संकेतों का भुजन कर सही  
उसे वास्तविकता बनना है भू पर व्यापक !  
स्वागत करता हूँ मैं जन का ! धाप देखिए,  
मेरी नूतन प्रतिमा जन मन की वर्णन है !

दर्शक— इधर किसान खड़ है धरती के प्रतिनिधि-मे  
 स्वयं सस्य झाड़ी छिर पर पर उधर अधिक हैं  
 नवयुग जीवन के निर्माता हृष्ट पुष्ट तन—  
 निज बाहों में मृगौसक को सिध में सों।  
 दीरों के नीचे उड़लित जीवन सागर  
 युग संवर्षण जन प्राणांगा का छोटक है।  
 ऊपर जैसे नव प्राणा का सिद्धिज पुन रखा  
 मीन मर्मरित पस्तक इस के संतराज से।

जनभावक— चमत्कार है निश्चय धर्मपुत्र चिन्मयता का।

दर्शक— ये प्रवेय हल धन लोक जीवन के संवस  
 जो धरती की निर्मम जड़ता को विदीर्न कर  
 प्राण प्ररोहों में पुनक्ति करते भू का उर।  
 यथ कथित है उधर, प्रकृति सूचक नव युग की  
 इधर हवीका निश्च विषमता पूर्ण कर निश्चिन  
 नव समय जर रहा विरोधों में जीवन के।

### जन गीत

जन धरणी का बल है हल  
 जन धन का संवस है हल !  
 शापी सवस हवीड़े हंसिया  
 जिसके कर्मठ कसा कुपस !  
 पृथ्वी का पैरधर नग हल प्राया  
 नवल सन्वता का प्रमात संग लाया  
 हल मे नीर पमी का सीगा  
 मानव का जर डार बसाया !

स्वर्ध नरा का बल है हल  
 जगता का संवस है हल  
 शापी सवस हवीड़े हंसिया  
 जिसके कर्मठ, कसा कुपस !

## पाठक

सौहृद निमित्त को ठोंक पीट कर प्रतिपाद्य  
 मन में निमित्त किया महत् जग जीवन  
 मुन मुन कर निज रास्सों के स्वर्गिय कन  
 हंसिये मैं हंस मरा भांड में भूषन ।

कठिन तपों का फल है हल  
 प्रथम कर्तों की कल है हल  
 जीवन की रोटी भरती का  
 राजा भटल घबल है हल ।  
 मातृभूमि का बल है हल  
 जनगण का संबल है हल  
 भाई सवे हवाई हंसिया  
 जिसके कमठ कसा कुपल ।

वर्णक—

धन्य हो उठा कला कल इस जन उत्सव से ।  
 (प्रतिमा को ललित कर)

काम बक यह भूम नभ्य युग परिवर्तन को  
 सूचित करता अंतरिक्ष में नव युग का रवि  
 उदय हो रहा जिसकी स्मित किरणों से मंडित  
 भरा स्वर्ग के नभ्य खड़ी मोमार्च सेतु पर  
 नभ्य चेतना की प्रतिमा सोभित है निरपम ।  
 स्वर्ग पालि यह लिए वाम कर में दक्षिण कर  
 अमर दान दे रहा बरब मुहा में उठ कर,—  
 विजय ध्वजा सा संवस फहरा रहा क्षितिज में ।  
 नीरव करना समता से स्वंवित बलस्वन  
 दिव्य शांति है बरस रही स्मित मुख संवस से  
 ध्वंस अंध हो कड़ि रीतियों के बड़ बंधन  
 बरजों पर है पड़े दिव्य भूषणा कड़ी-से ।  
 लोक मोहिनी निरव शांति की मनोमूर्ति यह  
 अभिनव भी शोभा परिमा में जाग रही जो  
 घरा क्षितिज पर जग जीवन के दीप्यों को  
 निराल समन्वित करने निज निशीम बल में ।

शिल्पी—

साक्षर कवना यह जिसके प्रिय सनेहों पर  
 धमर प्रेरणाएँ भरती रहतीं बरती पर,  
 नव नव धारसों में मूर्तों में वलित हा !  
 मान बहिर्मुख मिले जन भू के जीवन का  
 अंत केन्द्रित अंत संयोजित कर फिर न  
 नव समत्व में बाँध रही वह जीवन मांसल  
 ऊर्ध्वग व्यापक साक अंतमा में विवक्षित हो !  
 मानव केन्द्रिक है जीवन का सत्य चिरंतन  
 मानवीय महिमा में मूर्तित हो स्वर्णमय  
 युग जीवन के अंधकार को समुत्त स्पष्ट सं  
 नव प्रभात में बरस रही वह स्वर्णिम चेतन !

**हुच्छ स्वर—** निश्चय यह जन के मन मंदिर की प्रतिमा है  
 जन आकांक्षा की प्रतीक जन जीवनमय है !  
 सामूहिक चेतना हो सटी मूर्तित इसमें  
 सज्जित स्फूर्ति विश्वास भरेयी यह जन मन में !  
 हम इसके हित प्राणों का समिधान करण  
 भू जीवन में प्राण प्रतिष्ठित कर इसकी छवि  
 निज कर्मों में मूर्त करके इसका वैभव !—  
 भुव भुव तक गार्ग्य जनमय इसकी महिमा !

**बरांड—** दिव्य शांति की धमर चेतना की चिर जय हो !

**हुच्छ स्वर—** नव युग जीवन की घोषा प्रतिमा की जय हो !

**बरांड—** युव निर्जम पाषाण शिखा में जिसने अधिमग्न  
 प्राण भर दिए निज साक्षर अंत प्रकाश सं—  
 जय जीवन की मातृ चेतना की चिर जय हो !

**हुच्छ स्वर—** लोक सज्जित की जय हो नवभुव भी की जय हो !

### समवेत गीत

जयति जयति मातृ मूर्ति  
 शांति चेतने ।

जयति सोक दानि सोक  
मुनि केतने ।

मन पुन पीवन प्रमान  
निलरी तुम ज्योति स्नात  
स्वर्ण रश्मि स्फुरित गात  
मास्वर बधने ।

करा रदन बना गान  
हृदय स्वप्न मूर्तिमान  
गूँज ठठे मूक प्राण  
जन बुद्ध शमने ।

सफल हुए योग ध्यान  
सफल मक्ति कर्म ज्ञान  
खिले मनस् कमल स्नान  
भव तम वधने ।

बड भाव हुए मुक्त  
मानव मन प्रीति युक्त  
शांत रक्त वेश मुक्त  
यति प्रिय करणे ।

बरसे हिम पुष्प शान्ति  
निलरे फिर दिव्य काति  
भू मन की मिटे प्राप्ति  
जनयन शरणे ।





# ध्वस-शेष

(नव जीवन निर्माण का स्वप्न)



बुद्ध

युवती

पुरुष

प्रकृति

मागरिक

सैनिक

दृष्टा

प्रतिनिधि



## प्रथम दृश्य

[विस्तृत राजमार्ग : डंके की चोट के साथ ध्वनिपूरकों (साउंड स्पीकर) द्वारा राजबोपचा हो रहते हैं। एक ओर से कालबूढ़ का प्रवेश, जो शांति का-सा प्रतीक समझता है। बूढ़ ध्वनिपूरकों के चोप से बरत होकर कार्पो पर हुपेली दिए, राजमार्ग के किनारे एक बड़ी सी कोठी से बहते नैधुस जाता है।]

(राजबोपचा)

छांत रहो हे भूजन ध्वर्ष न बैर्य बैबाधो,  
बिरब बुढ़ की बाधका मन में मत लाधो।  
छातकित नत हो जो जन से भूढ़ रब भय  
मिध्या जनरब बैसाएँसे राजाज्ञा से  
बंडित होंसे सामधान सब जन हो जाधो।  
छांत रहो हे बोधी बाधबाहें न चडाधो  
राजाज्ञा यह सब जन सामधान हो जाधो।

(डंके की चोट)

बूढ़—

(कमरे में प्रवेश कर)

कहाँ आ गया हाम न जाने राह भूम नर,  
मटक गया बाहर के जन में। ठीक कहा है  
भूम भूमम्या वह बुनिबा। बोधे की टही  
नई सम्यता। यह संसारे समु बुस्तारे  
रूपया पारे पाहि मुरारे। भज गोविन्ध  
भज गोविन्ध गोविन्ध भज मूकमते। यह,  
जाने कैसी भूम मची है राजमार्ग में।—  
बहुरा हो बाढेना मैं इन ध्वनि यंत्रों के  
बिकट नाद से, विस्फोटक-से फूट रहे जो।

मुबती—

(घठकर)

छांति। "बुढ़ का भय फैलते घाय नगर में  
विस्फोटक के कटने का मिथ्या प्रचार कर

हंसीय घपराय हो चुका है यह मोपिन  
राजाज्ञा से ।

बूढ़— (अवराकर)

समा कर घपराय देनि मैं  
बाहर के कोलाहल से मन में बबका कर  
धनुमति लिए बिना ही अंदर घुस आया हूँ ।  
थक थक करता हूँ नगर की रैन रैन से ।  
उठ केसा जन प्राबोसन कैसी हलचल है !  
यही हाथ नापरियों का संरक्षण जीवन है ?

युवती— (तद्वाच्य)

बयोबूढ़ है थाप व्यर्थ यों बिचलित मत हो  
छाँत सुख हो उबर बैठ जायें आसन पर !

बूढ़— (स्वस्थ होकर)

थाप कीन है देखि 'यहाँ मैं कहाँ था क्या ?  
समाचार पत्रों का कार्यालय है यह क्या ?

युवती— नहीं पिता यह युग का मन है ! वैसे इसको  
कार्यालय ही समझे !

बूढ़— (आश्चर्य)

ईश्वर !

युवती—

विश्रुती की

नई सम्मता हूँ मैं जिसके सकेतों पर  
निखिल विश्व जन नाच रहे है मंत्रमुग्ध हो ।

बूढ़— (विस्मय विमूढ़)

क्या कहती हो बेटी यह क्या युग का मन है ?  
टूटे पूटे बीमर के बाएँ छानों का  
बूम भरे भरे बाजब पत्रों में सिपटा  
कटे छटे धड़कारों के पन्नों का बिलर  
बड़े बड़े छातों मारी भरकम पोथों से  
मरा टसाटस युग का मन है ? रोड़ मुकाए

जीन पुतिन्हों के बोझों से !! सच कहती हो ?  
 अस्तव्यस्त कूड़ा कचरा यह युग का मन है ?  
 पिता यही युग का मन युग मानव का मन है !  
 भाप बुना आश्चर्य मत करें !

मुबती—

बूढ़—

मुबती—

(तिर हिला कर) सर्वनाश है !!

इसे अजायबघर समझे या चिड़ियाखाना !  
 इसके सँकरे खानों में प्रतिदिन की चौड़ी  
 बटनाई है दुँधी हुई, सब छोटी मोटी  
 बेस बिदेसों की—धरती धाकाए सिन्धु की !  
 जग के क्रिया कलापों का मंदार यह बूढ़—  
 भाप इसे मोहाम कहे या कूड़ाखाना !  
 (बूढ़ तिर हिलाता है)

पर, पू जीवन की कुरूप कटु वास्तवता का  
 इसमें निर्मम परिचय संचित है बिम्ब व्यापक !  
 जीवन संवर्णन का तीखा कड़वा अनुभव  
 वहि बूढ़ युग युग का पचराया विस्मृत मन  
 बड़े मूलपूर्वक संरक्षित किवा गया है  
 इन विपन्न खानों में जड़ अवसाह से भरे !  
 कैसा रिक्त प्रदर्शन बोधी बीडिकटा का !!

बूढ़—

मुबती—

भाप ममानक यूँक यहाँ जो सुनते प्रतिजन  
 समाचार बंधों के हलचल की ध्वनि है वह  
 बहान कर रहे जो संवाद विविध देशों के  
 मनुज नियति पर बात फिटफिट कोन लौंछ से !  
 वायु मार्ग से सिन्धु मार्ग से भूमि मार्ग से  
 निश्चित बिम्ब जीवन का मन का स्पष्ट कर्पण  
 अक्षरित बाहिर हो आबोनिव करता रहता  
 आज अराजीबी मनुष्य के आहत मन को—  
 बर्बर जो हो रहा सतत विधुत् बंधन से !



बुढ़— (हमसि स्वर में)

हाम धमागे मानव की ऐसी निवेदना ॥

पुबती— भू बिभूत हो गया पिता मानव का धर, उमे ज्ञान सब रज चीन जापान में कही कब क्या है हो रहा विविध भू के भागा में ! सब संवन ग्युपाक पैठ कानों के भीतर मनमन करते रहते बरों के छतों-से पेरिंग मास्को सब घोंठो पर हैं जन जन के — धरा धामजक सी करतल में सम्य मनुज के !

बुढ़— क्या कहती बेटा ये शुर्भुल कन निरंतर वृषित अंतुघो सी निपमय कुच्छकार छोड़ती ? भुनगों सी भुनमुना बाबुरों-सी टरी कर !

पुबती— बिड पक्षियों सी ये अपने पंख छपपटा धारनाह करती सब भाषा ठोंक पीट कर— कौं कौं मन में मानव मन की निदमता से ! ये कहती है पिता धाम सब रेष धरा के भोक सम्यता की संस्कृति की मानवता की उज्ज पुकारें मना मोह धावरण डाम कर सुभ छाति की छस घोट में महाप्रलय का खर ताड़व रज रहे, नयकर धनु बानव को पाल पोस कर, समर संगठित कर जन-जन को !

बुढ़— (अनुवाप से)

यहा धामुरी हाथो में पक गई धमि छिर ॥

पुबती— निगल मुड में प्रजापति की रसा के हित जुझे ये भू पाण्ड रज में ध्वजा बुना कर, बर्ष बमिष करने शुर्मद प्रासित्त धमि को धीर सदा के सिध समायन करसे रज को ! किनु धाम सब जन मनस के धाकांसी जन

निम्न धामि के हनु सीखते धातुम उद्यत  
धीर बढ़ाते जाते सैनिक घसों का बस—  
धनुषम के प्रतिबम के बना निजय मोहक बहु !  
धाम धामि के पीछे पागल है अस्मान्त जय ! !

बूढ़—

देख रहा हूँ बेटी में मन की धाँवों से  
मनलियूर, भीषण घूमिल बुर-सिद्धि बजत का—  
कुलकाय पंखों में उड़ कर बसा था रहा  
महामाघ का मन धू पर घोषित बरसाता ! !  
धाम पाप हों मन के ! मेरे बूढ़ उदर में  
अवचेतन का गह्वर कभी उमड़ उठता है !  
पर मानव घासक है मू की अग्न्य नियति का  
पिपला सकृत्ता सीह बध की निर्ययता वह  
धीर बदल सकृत्ता मू पक्ष जीवन प्रवाह का !  
देख रहा मैं ईश्वरकार प्रलय का बारत  
उदय हो रहे स्वर्ण बिम्ब पर मय मोहित हो  
वीर रहा है उसे सीसमे क्षिप्तु साध ही  
उसकी स्वप्निय धामा में बेतना इवित हो  
युग प्रयात की मय घोषा में सुलग रहा है !  
समझ रहा हूँ मैं युग के कट संवर्षण को  
ऊर्ध्वग समरिक संवरणों के बीच सिद्धा जो  
मात्र बर में मौलिक प्राध्यात्मिक विप्लव बन !  
ध्वस्त हो रही धीर्न मान्यताएँ जन मन की  
बदल रहा जय जीवन के प्रति वृष्टिकोण धन  
छेड़ता जाता मन संघय का बना कुहासा  
जग से रहा मनुष्यत्व मय ध्वस्तविज में—  
मनुष्य जाति को मू जीवन का मय बर देने !  
बिजयी होया मामय माग्निक युग क्षमक पर,  
मनस वास्तविकता निखरेगी मौलिकता से—  
नव प्राध्यात्मिकता का स्वप्निय संजीवन पा !

मुवाती— पिता आपके बच्चों को सुन कँप उठता मन  
घोर हर्ष नश्यद हो उठता कातर घन्तर।  
रक्त स्वेद के पंक में सनी छाज मनुबता  
जात नहीं कब होया मृ पर वह स्वर्णोदय।

बुढ़— निमत समय पर सब कुछ हो जाएगा बिटिया  
निकट या रही भीरे धन निहिष्ट बड़ी वह  
जो मानव घन्तर में कब की जन्म से बुढ़ी  
बैर्य बरो सब मयम हागा। घण्टा बेटी  
धन में जाता हूँ बोझा बिधाम करूँगा।

(बुढ़ का प्रस्थान)

(राजमार्ग पर मवाड़े की ओट के छाव दूर से आते हुए राजघोदना के स्व  
मुनाई बैठे हैं।)

शान्त रहा है भूजन व्यर्थ न बैर्य पैवाधो  
विवश बुढ़ की धांसका मन में मत साधो।  
शान्त रही सब झूठी झलवाहें न उड़ाधो  
राजाज्ञा यह सब जन सावधान हो जाधो।

## द्वितीय दृश्य

[विप्लवगुहल भीम बरब बाछ संगीत एक विद्याम नगर का बाहर  
मेवप्य में अणु-विस्फोटकों के कूटन की प्रमाणक इजनि गूँथभूमि के पद पर महा  
ध्वंस की विकराल छाया पड़ी है धूमि की गपटों में लिपटे रंगीन फूलों के बादल  
कमल रहे हैं सुहर से बाहिल भीत के समवेत रघर बीरे-बीरे स्पष्ट होकर,  
सुनाई देते हैं।]

गीत

प्रलयकर है

डम डम डम डमिल डमर

दुईम स्वर है !

बहुक उठी नभ ज्वाल

जुँझुँक उठा डरत् व्यास

सहक रहा विप करान

मम मम हर है !

जयन रहा धनि व्योम

रच रहा बिनाछ होम

बुमर रहा तिमिर लोम

नहर हर है !

ध्वंस धप भू विनंत

एक वृत्त हुआ धंत

भार मुक्त धन धर्मंत

जय बिलर है !

मम स्वार्थ कमुप धोक

ध्वंस मगर धाम धोक

निधर रहे मम धार

विरवमर है !

मौलिक मर हुषा पूर,  
मानस धम हुषा पूर,  
भेतन में उठ्य पूर  
सिब सिबतर हे !

[अंतरिक्ष में पुरुष और प्रकृति का प्रवेश पुरुष ज्योति-रश्मियों से  
प्राप्त प्रकृति इंद्रजम्बीरी छाया से वेष्टित है।]

प्रकृति— देख रहा कुस्वप्न हाव क्या परती का मन !  
महाध्वंस सा छाया कैसा बोर चतुर्बिक् ?  
गहरा रही प्रसव की छाया जन बरणी पर  
प्रौढियासी के डाल मयानक धध धाबरण !  
सहेमित हो उठ्य बरा भेतना सिन्धु क्यों  
प्लावित करने भल्ल प्राण मन के पुमिनों को ?  
नीस सरोवर ही कुम्हसा कर म्नाम बिछाएँ  
महाधूम्य की पसकों सी मूँच रही तमस में !  
सीम रहा जन प्रसकार मयभीत ज्योति को  
क्लिन्न भिन्न कर किरनों के भीने सतरैम पट  
धुंभसी सी पद रही रूप देखाएँ जग की  
हाँप रहा क्या विषम ग्लानि से निज विपन्न मूख ?  
ध्वंस भय हो रहे सवदन जड़ मूर्तों के  
समाचित्त्य सा भाव हो रहा स्थूल जगत क्यों !

(विप्लव-सूचक वाद्य संपीत)

प्रलय बलाहक सा बिर बिर कर विषम सितिज में  
गरज रहा संहार बोर संवित कर नम को  
महानाम का बस भीर निज अट्टहास्य से  
घट घट बाहुन निर्दोषों में प्रतिध्वनित हो !  
ध्वंसित भीषण वध कङ्कन उठते धंवर में  
नय नय चकित घिसाएँ टूट रही भरती पर,  
महानाथ किटकिटा रहा कटु नीह बंत निज  
विकट ब्रूम बाध्यों के स्वासोष्मास जोड़ कर !

रंग रंग के लपटों की जिह्वाएँ सपका कर  
हरित पीठ धारण नील ज्वालाधों के पल  
भुमक रहे विद्युत् घोषों के पल मार कर  
ज्वलित द्रवों के निर्झर बरसा धूमि स्तम्भ-से ।  
धू धू करता ताम्र ध्योप धू धू जलती भू  
धू धू जलती शिखा ज्वलता धू धू सागर  
भनक रही भू की रज बहक रहे गल प्रस्तर  
सुलग रहे कम बिटपी बबक रहा समस्त जग ।

(महाविष्णुसूक्त का संपीत)

धूमि प्रलय क्या हाथ मस्तक देवा मनु की  
इस सुन्दर मानसी सृष्टि को जिसे जल प्रलय  
मग्न नहीं कर पाया कुस्तर महा ज्वार में ।  
विचर रही छाया-वृत्तियाँ सी कैसी भू पर ?  
प्रेम लोक कुल क्या आज क्या मलय लोक में ।  
स्वप्न वृक्ष-से घोरमन हाते घाम पुर नगर  
विनिष्ठ हो यह माया जल जल छाया पट पर ।  
भूतों का पिहित जलज गल तटित् स्पर्श मे  
भूम बाष्प बन कर विमीन हो रहा निमिष में ।  
क्या स्मृति में ही रूप रही ध्वंस सृष्टि धब  
दृश्य स्पर्श इस बंध शब्द मुक्त बहिर्गम हो ?  
कैसे आया महानाथ इस प्रबल बल से ?  
हाथ कौन सा महार्थक वह कुं नरक म  
मल्ल मल्ल करता निघर्ष को पशचात्त म ।।

पुनः—

महिषासुर, तारक बुधामुर से भी भीषण  
महाकाय यह धनु शनक उड़ रहा गगन में  
धूमिल बैह पूजा प्रबल जलते बाणों की  
किमाकार पावक के पर्वत सी राधाचक्र ।  
जड़ भूतों की भूम धूमि से अनुप्राणित हा  
ज्वल रहा वह जलते द्रव्यों के जलन जग ।

निर्गत कर मनुजों से घत विषमय फूटकारें  
 दावण गर्जन से बिक्र कम्पित कर धनस्त को ।  
 घत घत तड़ित् प्रपातों सा वह टूट व्योम से  
 रौं रौं रहा जन भू को निर्मम लौह पर्वों छ  
 झस्त झस्त कर क्षय में जड़भूतों के प्रथम  
 चूर्ण चूर्ण कर अस्त्रि भूधरों के हृत् पजर !  
 मदोन्मत्त वह बिकट हास्य भरता दिग्भारक  
 महागाध का खर ताडन रण वस्त मुषन में —  
 विधुत घूमों से विधीर्न कर घरा बस को  
 ध्वंस भ्रष्ट कर निखिल सृष्टि को महाधम में ।  
 बाहि बाहि मच रही प्रवलि में गगन पवनम  
 बाहि बाहि कर रहे सकल जल बलचर नमचर,  
 रौं रौं जाती घात उरो की मल पुकारें,  
 ध्वनि की वलि से कही प्रकार है वेग वैत्य का !

(विप्लव गर्जन)

प्रकृति—

क्या होगा तब बेग हाम इस मृत मृष्टि का  
 बप रग रेखामय मेरी निरूपम कृति का ?  
 मुग्ध प्रेम के पसकों पर सौन्दर्य स्वप्न सी  
 मोहित करती रही सदा जो स्वर्ग भोक को !  
 विश्व प्रथम के सृजन हर्ष से पुसकित होकर  
 सूक्ष्म स्थूल के छायाछाप को गुधित कर मित्र  
 जिसमें मैंने अपने रहस्य कमा कौशल से  
 सीमा में निस्सीम अन्धिर में बीजा धिर को  
 मृत्तु तमस में गूँथ अमरता के प्रकाश को  
 चेतनता को धर्म ध्वनित है किया धन्य में ।  
 अपने उर के रक्त-बान से जिस निरुर्ब का  
 धुम धुम से अभिराम स्नेह अम से सिंचित कर  
 बिकसित मैंने किया गिर्य नभ की सुपमा में  
 बप गुणों के सतरेन ताने बाने भर कर !

(सृजन आनन्द द्योतक बाध समीत)

कैसे प्रहसित हुई नीमिमा मीन गमन की  
 भरती को रोमांच हुआ जब हरियासी में  
 कैसे नाच उठी सागर उर में हिस्सोंमें  
 प्रवचनीय है मर्म कथा उस रहस्य सूजन की।  
 मुझे बाध है सुधा कमल सा पूर्ण चंद्र जब  
 रजत हृदय से छनकर उठा था प्रथम उपा के  
 मुख पर सहसा जब भग्ना की लाली दीड़ी  
 इंद्रधनुष का सेतु टंगा जब फेनिस नभ में।  
 घनी घनी तो फूलों के घणमक दुग प्रचल  
 घाढ़ासा से रंगे स्वप्न भावनावेस में  
 समा सफी प्राणों की वाकुल सुरभि न उर में  
 कोयल का घावेरा स्वरों में फूट पड़ा घत।

(कचन बाघ संगीत)

कैसे मैं प्रेमों की इस प्यारी संसृति का  
 देक सहेली कदम ध्वंस प्रामुरी शक्ति से  
 जिसको मैंने या की मृदु ममता समता से  
 सतत सँभारा निज अंतर के निमृत् कल में।  
 ठकित् कोप से बिघटित हो भीतिक बिबान सय  
 बाण्य जूम बन तितर बितर हो रहा दुग्ध में  
 खील रहा अजु विगलित बड़ ब्रह्मों का सागर  
 मुखे जड़ ज्यों टूट बैस गया हो धरती में।  
 उमड़ रहे दुर्घम पूर्ण उच्छवास विप्लवे  
 बरा मर्म की घमि फूट धाई है बाहर,  
 गूँज रहा यह महामुल्य संगीत अनुदिक  
 पकाधीन में बिसर रहे गल्लन पुंज हों।  
 उमड़ रहे वीर्यों-से नूबर धरा कर्म से  
 हिस्सो-सो से सठ गिर, शन भर में बिसीन हो।  
 महा प्रवत धनु के बिचात से लीन परिनी  
 लंड लंड हो रही रिक्त मिट्टी के चट सी।

(विश्व प्रलयसूचक बाघ संगीत)



कैसे हाम रहेगा बिबुध ताड़ित भू पर  
 कोमल मांसम घोमा देही दुर्बल जीवन  
 जिसके मुल पर खेसा करती मुकुभों की स्मिति  
 जिसवन में पलती धोसों की मीन सजसता  
 जिसके तर में स्वयं धरा का चेतन बंभव  
 भीडा करता रहता भावनाधों में दोषित ।

ओ जीवन सौन्दर्य जहाँ तर के पत्ते भी  
 मगल नित छाएल मुह की नीरव यति सप में  
 निज नयनों में मूँह विस्म की थी सूरता  
 स्वप्नात्मक पसरों-से सौं सौं प्रम मम हो ।  
 ओ बिराद सौन्दर्य निभूत जिसके अंतर में  
 सत रवि यति ताराग्रह घोमा स्पर्शित रहते  
 उपा झँकती जोम स्वर्ण वातायन तम का  
 रजत जड़िका शुभ छाति भरसाती भू पर !  
 हाय घाव क्या बिबि के निष्ठुर भू विलास से  
 मुरझा जाओये तुम अक्षमय भूमिघात ही ?  
 जीव जगत की मनुज लोक की दुर्भग घोमा  
 कुप्य निखिल हो जाएगी कटु कास गर्म में ?  
 जीवन की चपना मष्ट हो जाएगी क्या  
 निरचेतन के अप्रकेत तम में बिभीर्ण हो ।।  
 किसने जन्म दिया इस दुर्भग धनु दानव को  
 कीन बन्ध की कोब रही बह बिषम बाधिनी ?  
 किसने विक संहार बुलाया जन धरणी पर,  
 कहा कीन बह नारकीय भू जीवन डोही ।।

पुरुष—

कातर मत हो प्रकृति तुम्हें यह मर्यों की सी  
 करण क्लीबता नहीं सुहाती घात करो मत !  
 मृत प्रलय यह नहीं भाव यह मन क्षिति है  
 आरोहण कर रही सम्मता नव सिंहरों पर ।

## भाषक

घंठर्मन की ही विभीषिका बाह्य जगत पर  
प्रतिबिम्बित हो रही भयावह, भाव प्रतापित  
भौतिक शृणु यह नहीं दलित मानव आत्मा का  
स्वाय कोष ही टूट रहा पाषाण प्रपात का  
जीर्ण घरा मन के बँदहर पर जो युग युग में  
मनुज श्रेय की बुद्धि मितियों में विभक्त है।  
आज युगों के रुख मूक मानव घंटर का  
विकृत नाद सलकाए रहा जिस मनुष्यत्व को  
संवरण बन रहा घोर मानव के उर में  
यह बिराट् बिस्फोट उमी का राम दून है।

[स्वायं सोम प्रावि की बीबी चुकर छायादृष्टियों कुलित बेपटायों का  
प्रभितय करती है जिसके ऊपर एक बिराट् घन की छाया भूतदर घोट  
करती है।]

मानव ही है सर्वाधिक मानव का भक्त  
जीवित मय में बुद्धि भ्रान्त युगबीबी मानव  
दानव बन कर आत्मघात कर रहा संघ हा।  
छोपक घोषित में विभक्त अब युग मानवता  
आति पति में वर्ग श्रेणि में शान्त छंदिन  
घनियों का घमियों का घन बन का जन बन का  
यह अंतिम कुर्बं समर है बिम्ब बिनाशक —  
सामूहिक संहार तिस्र विपक्रम है विवका।  
आम रहे हैं आज युगों के पीछिन घोषित  
हेम्य दून के बड़ पंजर, मय युव बेउन हो  
कर्म कुरास जग बीवन के घमबीबी शिखी  
सोन साम्य भिराणि हेतु अब एक प्राण हो।  
टूट रही बटु मोह गृध्रताएँ जनयन की  
मू रज बीबी पाषाण वण हो रहे प्ररोहिण  
आज एत निज अग्नि शृणु फिर सोम प्रगमिन  
मसम कर रहे मू का कम्पन दृष्टि ज्वालन।

अवचेतन के मनोज्ञान से पीड़ित मानव  
 अवरोहण कर रहा तिमिर के घतम गर्त में  
 यशों की धामुरी सक्ति से जग का संसर  
 बिखर रहा जीवन प्रमत्त हो बहिर्भ्रम में ।  
 कङ्कि ठगण नीतिकता से आच्छादित जेनना  
 देख नहीं पा रही प्रयत्न का पथ शिगम में  
 मानव का ही हृदय-स्रोत धनु बिस्फोटक बन  
 महानाश का आवाहन कर रहा धरा पर ।  
 संस्थाओं में बन्ध संगठित डगर खुदा है  
 समय रहा है जपर काम अवचेतन का तम  
 खुदा नाम से दीर्घ दीर्घ हो रात जेतना  
 आरोहण के विमुख मन्वनी अचोमुखी हो ।

(सभ्यता का विनाशसुखक बास सीपीत)

बेसी प्रिये बिराट् भीष्म सीत्थर्य नाथ का  
 अक्षुभ्य भी शोभा है बावन महार्घ्य की  
 महा आल स्र स्रत सहस्र फल दान गगन में  
 महानाश फूटकार भर रहा बन्ध जोष कर ।  
 सरल फेन के सगल अहन्ते भूमिभ बावन  
 महामृत्यु के कुबल मार विघातों में बहु  
 भङ्ग रहा पुन केंचुल भीषण ध्वंकार की ।  
 छत छत बाबाएँ, बडबामन की आमाएँ  
 भाट रही पहनी बिरियों सागर लहरों को  
 सुरंग स्फुलिंगों की फुहार में मृक्षो बिलस —  
 झर झर पतता वक्षित अकित हो तापपण क्यों !  
 मोर बज्जड़, प्रबल प्रमंजन अट्टहास भर  
 पंख अक्षर बीत्यों से उड़ कर, निखिल भुवन को  
 कुबल रहे निज मृत्यु मत्त उद्धत टापों से ।  
 भुम भूल बन निखिल भूत भूमते प्रलय के  
 विकट भीवर में अकालकार घुमड़ प्रंबर में ।

## मादक

उदम रहे पर्वत कंदुक-मे मूम भण हो  
 कंपते धंयद धरण पिसकते गर्व पिपर पिर  
 फूट रहे निर्भर निपात घात तड़ित् स्तमित हो  
 विपमित प्रन्तर खंडों के बाप्यों से फगिस ।  
 उमड रहा धंयुधि घात फल बस स्तनों मे उठ  
 हिस्सामों पर कस्मोसें करनी पारोहन  
 बाप्य घूम बन छिटक रहे सतरंग बस के फल  
 स्तौत चीकरों में सर्पक सपों-से सोड़ित ।  
 भूमि कंप घात बीड़ रहे लठ घरा-बस पर  
 गिमा धस्त्रियों को मासम रज को बहेरने  
 फा फट पड़ती ज्वाभामुलिया बिक्र बोप कर  
 इबित रक्त मज्जा उडेसती घरा उदर से—  
 हृदय होम ज्यों उगस उबामों मे बमनो मे  
 बूब रही हों नम के मुग पर पोर मृणा से ।  
 प्रभु नपटें फुफ्फुकार मरी जीभे बटका कर  
 धात्मसाग् कर रही पदाकों के तत्वा को  
 प्वजित द्रवों के पर्वत टूट रहे पृथ्वी पर  
 नहरे गतों में बिदीर्ण कर घरा-बस को ।  
 सिंह गुहाधों में बहाइते महाबास से  
 गज बिभाबते बस चीकर बरसा सूँडों से  
 दीप्त धूम श्रृंखों से घाहत ज्वाल कूदते  
 गिरगिरपड़ते बिहग खल करते कपि कंप कंप ।  
 विचलित मत हो प्रिये संवरण करो जया को  
 यह केबस दुस्वप्न मान है युग के मन का  
 गुम बिकास बसिनी पवित हो मेरे उर की  
 देक रही हो केबस संभावित मविष्य को ।  
 धविनापी है तत्त्व धविन धविनापी है हम  
 धविनापी है घमर केतना कर जीवों की  
 नाप नहीं होता बिकास प्रिय धमूत सत्य का  
 मिथ्या का संहार प्रबल्यमापी जग में ।

पुनः निवृत्त नेपथ्य लोक में निज कौशल से  
मनसः नृष्टि तुम सुखन करोगी महाकाश से—  
परमार्थ के महानर्थ से अभिप्रेरित हो !  
पापी हम तुम सब हो जाने सब परोक्ष में ।

(अस्त-व्यस्त बैस में तहसा भयभीत नागरिकों का प्रवेश)

धीरे धीरे रात प्रलय घरा का बस चीरते  
रीर रही लपटें पावक के मृगर पय भर  
टूट पड़े सत नरक धरसते बंड मूढ हल  
छूट गए रीरक के भूत पिशाच प्रेत हों !  
कड़कड़ करते कूड़ बप फट फट पड़ते सिर,  
रक्त भास मज्जा उड़ते क्षण धूम आप बन—  
फूट गया पृथ्वी के भीषण पापों का बट ॥

सुन पुनः मांसल तन पल में होते ओम्भ  
चटक अस्त्रि पंजर क्षण में मिलते घूरन में !  
तंजु-नाम ही त्वचा छिहरती मूसल ताप से  
झिन्न पसलियाँ झिलर टहनियों ही पतझर की  
धरमर बल उठती पल में सत मौम धिन्ना ही !  
चीत्कारें करती चीत्कारें छूट कठ से  
मूढ प्रतिष्पनियों ही तत्सथ बेह मुस्त हो  
बाल बुद्ध स्त्री पुंस्य युवक अपभित निरीह बन  
निर्मम बैबी पर चढ़ते बाह्य विनाय की !  
महामृत्यु मूह फड़ भयानक नरक गुहा सा

निगस रही भू को सोंसों में सीप मसक सी—  
झीने मूह बिर नगर लोटते घरा नर्म में  
गलों में बँस उड़न स्फ़ीठ भूमिल सिहरों में !  
छायाओं-से कपेते उड़ते—बुस्य पुरों के  
भस्म देय प्रासाद पीकते बड़े यथावत्—  
भूम रहे भू प्रांत मँवर में पड़ी नाव-से !

धार्ष्ट्य और तुमुल विभीषिका जन बरणी पर  
बरस रही पावक बाराणें रक्त सूर्य से ।  
मम विभीष हो रहा भयंकरता से अपनी  
भगवद् हो मम गई प्रकृति के तत्वों में क्यों—  
माग रहा जीवन अपनी ही छाया से डर,  
निज धर्मिण बरनों पर भँपड़ाता उगमग बन ।

(तेजी से प्रस्थान)

(सैनिकों तथा भयिकों के मेघ में कुछ लोगों का प्रवेश)

कुछ स्वर— बूम रहे मनु के बानर से मू के बनपन  
जूम रहे हैं महापाप से घपरवित जन  
मम निरम्य के तत्वों ने अपना मम्य बन  
जन मन में भर दिया मनुज की मांस वेष्टियाँ  
परंतु सी उठ रोक रही दुर्धर मनु को ।  
माग रहा जन के धोमिल में जीवन पावक  
धीरु रही उगमग धिराओं में रात बिस्तु  
बहते हैं उगमग पवन सनकी स्तरों में ।  
भीत नहीं होया मानव इस महापाप से  
विश्व ध्वंस से भोक करे नम जन निमित्त —  
भी समत्वमय मनुष्यत्व को नम्य जग है ।

कुछ स्वर— फिर से मानव धिखु कैलेंगे नू वमद्यान में  
पुन बहेरी अप के मद में जीवन धारा  
मस्त मर रहे प्रबल व्यक्ति जन के प्राणों में  
विस्तृत करता वषण तदन वल-वल जनका  
मस्मसात् कर रही अग्नि जीवन का कर्म  
मुक्त हो रहा ईशसन फिर महापाप से  
रोप ऊर्ध्व फल जोत छठता मू को ऊपर  
फहरते दिहनाम मनुज की विजय ध्वजा को ।

## तृतीय दृश्य

[काल-भारत सूचक वाद्य संघीत इस मंच के बाह का दृश्य अग्नि का प्र-  
खील हो गया है कुछ बलिष्ठ हाथ काबड़े कुबारा आदि लेकर अंत के हो-  
लौबते हुए बीच में गा रहे ह।]

गीत

लोद लोद रे न हार !

शांत हुई अग्नि वृष्टि

ध्वंस लेप मम वृष्टि

लोच रही नम वृष्टि

पार पार, पार पार !

रक्त गर्भ भरत ब्रूम

मिट्टी में छिपे म्रूम

बही बीज बही कल

ज्ञान बीज कर विचार ।

एक स्वर— बीत गए इस वर्ष आत्र उस अग्नि प्रलय को  
छड़ी जीवन रात पड़ी बृद्ध गए धंपारे,  
कट छूट गए बूँद के बावत गए शिशिव की  
धुँवनी देखाएँ मुकुर बिजली विपन्न सी !  
रिक्त ताम्र का व्योम जल रहा युग संख्या में  
भूमि रहे तन को अंग के छपत भभूके  
ध्वंस पड़ा नू भाग सम्भता का गठ लौहहर  
तुल तक जंतु रहित मिट्टी के कदम ईश्वर सा ।  
बीर निराशा का विचार तम के कपाट स्र  
प्रार्थों को जकड़े है कूर प्रलय प्रहरी बन  
महाभयानक बना बरणी का जीवन प्रादण  
जहाँ जयावहता विभीत निज भैरवता छे,

## नाटक

मृत्यु-द्रुम्य कौपता निरादर्य मूनेपन से  
 निर्जनता प्रतिफलित निबिड़ निर्जनताओं में !  
 दूसरा स्वर—हर हर हे कूद लाव का हर हटामो  
 पूरे बल से जोरो ही कूड़े कचरे को  
 बाहर फेंको 'बहु' म मुठ कर तो देखो  
 यही कही पापाप जंड से टवरा बटवट  
 उगल रहा बिनपारी कोष भर कुवाल है।  
 कैसी है यह बख धिला जो प्रमय प्रणि से  
 बल गल कर भी राख नहीं हो सली बसमूही !  
 निरबख यह पापाप हृदय प्रतिया है कोई !  
 एक साथ बीरो घाबाघ ! 'इसे सब मिलकर  
 नरक योनि से बाहर लाकर सीमा रख दो।  
 मरक पोंछ कर इसकी एक झलक तो बरें —  
 बि: छि छि, कैसा कुत्सित विकराज बप है।  
 यह, यह क्या यमराज स्वयं ? या कोई बानव  
 काल ध्वंस से बच कर पयरा गया घरा म ?

तीसरा स्वर—घरे नहीं ! यह बखप्राण इतिहास मूर्ति है  
 रक्त पंक है इसके अवयव बाह्य भाकति  
 कुस्वप्नों से बड़ पलक कुस्मृति पीड़ित उर,—  
 यह मूर्तस आदिम बर्बरता का प्रतिनिधि है  
 मानवता का निर्मम सिलक फिर धम्यायी !  
 इस बबा हो पुन याद हो — 'इसे प्रेमेरे  
 प्रथम यत्न में बज्जा हो । मर मू जीवन की  
 इस जीपण छाया को यहरे नरक कुंड म  
 बो बकेल 'इस बभि का फिर पाठान भेज दो !  
 (मूर्ति को लुढ़काने का घब)

प्रस्तर युग से पूँजीवादी बुम ठग का यह  
 घोषित रंजित सूर्य मनुज की निर्ममता का  
 नई पीढ़ियाँ इसकी भाकति देख भयातम  
 निरम हो जायें जीवन स !



एक वृत्त हो चुका समापन भू जीवन का  
 बरस गया नव वृष्टिबोध जग जीवन के प्रति  
 बहल रहा मानव मन बरस गया भू ध्यान  
 नवा पुष्ट लुप्त रहा चेतना का स्वयंभूत  
 गत कुस्मृति को गिरचेतन में मज्जित कर दो ।  
 नया वृत्त छठ रहा माध इतिहास नहीं जो  
 गई चेतना का प्रकाश भू स्वर्ग बिभाषक ।

## गीत

खोव खोव कर प्रहार ।  
 सबी कहीं मिले धाग  
 बिगरी फिर उठे जाग  
 घाघा को तू न त्याग  
 सोंगे को ले निहार ।  
 भू के डर में बिभीम  
 युग अनेक पुराचीन  
 ध्वंस यह नहीं मबीन  
 धुनन प्रलय दुनियाँ ।

एक स्वर— एक मांस के सड़े पंक से समझ रही है  
 महा चोर दुर्बल रख हो उठती स्वासा  
 ठहर रहे यस अस्त्रि खंड छत खंडमंड हत  
 कुत्सित कृमि संभ्रुत कर्म मे महामास के ।  
 विम्ब्यापी संहार असंख्य निरीह जनों का  
 भूत सम्पत्ता का दास्य उपहार है वृत्ति ।।  
 अमर्षित मनुष्यों की बेहों की मांसम रस से  
 बरती की मिट्टी का नव निर्माण हो रहा  
 कितने मम प्राणों हृदयों का भावुक स्पर्शन  
 कितने सर्वर मस्तिष्कों का चेतन बैभव  
 धरा वृत्ति में सोकर एकाकार हो गया ।  
 क्या यह जान सकेगा स्वप्न प्ररोहों में नव ?

दूसरा स्वर—बू यह कीन करह रहा इस मरक कुंड मे  
 घीबे मूँह गिर कर चाहत मन दात बिभत तम !  
 कोई धबला है यह क्या ? मागिन सी बेबी  
 सोट रही है पृष्ठ बेद पर बल बाई सी !  
 इसे बीम बाहर कर दूँ इस पाप कुंड से !  
 महिमा मयी किसी नारी को रम्य भूति यह !  
 रूप भरे दृम रचित घबर, उरोज घबलुसे  
 धर्मों से भावभ्य टपकता भी ह्री कोमल  
 कुंचित भू लतिका इवित पर नचा अपत को  
 सात भविमा में लण भर बिभाम से रही !  
 मन मोहिनी रही होयी यह दुग्ध यौवन  
 हाथ ठक गया सहसा क्यों इसका डर स्पंदन !

तीसरा स्वर—देवू ? ओ यह बर्ग सम्पत्ता की अनुकृति है,  
 सोमा सज्जा रूप मञ्जुरिमा की प्रतिमा सी !  
 फूलों के मूहु अंग हृदय पापाण पिता सा  
 इसके स्वर में जादू प्रचरों से भी ज्वाला  
 भविकारों की मदिरा से प्रारक्त युम नयन  
 जन जन से स्वामिन अंहृत नवल प्रिय प्रवचन  
 भू विलास से महा समर सिद्धि से वे जग मे —  
 निखिल जग के कटु सोपन पीड़न से पोषित  
 निखरी भी इसके धर्मों की भासल घोषा !  
 स्वामानिक ही अंत हुआ इसका युम भू पर  
 पके विषमता के फल सी गिर पड़ी स्वयं यह !  
 ऐंठ रहा है उन मरकर भी लोह बूधा से ! !

गीत

खोद, लोह है उबार !

विरल धर्म का दमसान

सेव घब न शीम श्वान  
 विजन भीत सुम्य प्राण  
 भरते कातर पुठार !  
 काम राशि का प्रसार  
 छाया बन धक्कार,  
 विगत रहा निराकार  
 इस स्वयं ज्वालि द्वार !

एक स्वर— फैल रहा कटु घनाचार यह घरा गरफ में  
 खूब हो गया विगत संगठन मानव मन का  
 नीतिवता भीत्कार भर रही सघाचार धब  
 बुद्धि हीन बन धक्कार में राह टोड़ता ।  
 बर्बर युग की घोर आ रहा फिर मानव पशु,  
 धर्म नीति आदर्श निखिल भ्रियमाय है पड़  
 मूट पीट, हिंसा नृसंसत्ता घट्टहास भर  
 खर लाहल कर, रोव रहे मानव धात्मा को ।  
 मर्माहत हो सठी मनुष्य की मूक बेचना  
 मोक्ष विचारक बिम्ब मुझ की निर्ममता से —  
 गहरे घण पड़ गए मरिची के जीवन में  
 बन्ध कूट, कटु धम निमति निकम्मी मानव की ।।  
 अठल धरत में पड़ी स्वीकृती बिम्ब सम्मता  
 समझ रही जल हिल बुद्धिर्मा धबबेतन की  
 मनुष्यत्व का एकत खूब कर, कुमि सा मानव  
 शान्त बन कर रंज रहा दिगु भ्रष्ट रीढ़ पर ।  
 धन-वस्त्र गृह आवागमनों के प्रभाव से  
 पुनः प्रहेरी जीवन बिठा रहे गाटी गर,  
 धादि व्याधि बहु रोष दूटते शुषित शीम-से  
 काम क्रोध मर लोभ भ्रुगत नम नृत्य कर ।  
 राग द्वेष स्पर्धा क्रुद्धा कटु कमल परस्पर  
 नोंच रहे मानव का मुख पीते पंखों से ।।

दूसरा स्वर—बेसो है यह कैसी प्रतिमा यहाँ यही है ?  
 मूर्तिन सी भयानी बिप बाणों के प्रभाव से !  
 इसे गर्त से बाहर ना उपचार तो करा  
 हिमा हुआ कर ममक यह प्रवृत्तिस्म हा उठे !  
 हृष्ट पुष्ट है इसके पुष्ट मोह बलवर  
 छटित छिरा तर्कों में बौद्ध रही छव विद्युत्  
 टिक टिक करता हृष्य पिंड मनु काम यव छा  
 मंद पड़ रहा धीरे जिसका याचिक स्वसन !  
 यह मनीनयम प्रतिवृत्ति है कोई यह युग की  
 किमी सर्व उपस व्यक्ति की कीर्ति बिहारी !  
 धापो इसको जूरी हवा में रख दें क्षय नर  
 इसके मुरझाए मुख पर जब क-छीटें हों !

तीसरा स्वर—आ यह तो मूर्तिन युग की विज्ञान मूर्ति है !  
 दूर दूर हट जाओ इसकी बख देह का  
 मनु बिस्मयित विद्युत् किरणें गला रही हैं !  
 स्वयं मनुओं से निरस्त रही बिप की निश्चयों  
 बाम हस्त में रज्जु कृमियों में मर पात्र है !  
 दक्षिण कर का मञ्जीवन बन कूट गया है !  
 मस्मागुर छा मनु बल का बरवान प्रायः कर  
 यह अपने ही बरह हस्त से मस्म हो गया !

एक स्वर— नहीं नहीं यह अधिक समय तक मस्मागुर हा  
 नहीं रहेगा ! यह अपने ही मस्म छव म  
 मन्त्र जगम म पुन जी उठेगा पुष्पा पर !  
 इसके भीतर भूत सत्य का धमन धरा है  
 इसने अपने ही बिनाम म पाठ सीख कर  
 बिम्बसक म निर्मापक बन कर जगने बा !

गीत

गोर लोह रे मँहार !

जीवन तम हो मँहोर,

मन से हो दूर भार,  
 होनी फिर कृपा कोर  
 बीती को दे बिसार !  
 अतल उबधि में अकूल  
 बिना एक नित्य फूल  
 बिना नाम बिना मूल  
 यंत्र अतुल मुक्त नार !

एक स्वर— इस मिट्टी की पंख धोनि में जाने कैसे  
 कम जीवन का बीज फिर पका अक्षयवट से  
 जो प्राणों की हरिषामी में रोमांचित हो  
 सब जग में छा गया असंख्य प्ररोहों में हँस !  
 सुनता हूँ जो गहराई में पीठ खोखले  
 पाते वे नित बूढ़ रत्न पर वह मानव मन  
 अतल अकूल गुहा है जिसके रहस्य भर्म को  
 सब नहीं पाई मानव सम्मता अनीतक !

दूसरा स्वर— यही कील सेटा है यह कर्म में सिपटा  
 जीवन घात पथिक सा अगती से विरक्त मन ?  
 काल स्वविर कोई अपि फिर निद्रा में सोया  
 बस रहा है स्यात् स्वप्न बीकूठ लोक के !  
 उग्रत निष्प्रम सा लसाट धुति बीज-से नमन  
 भरा झुर्रियों से आनन जीवन अचित तन  
 स्फटिक मान स्मित बस यंत्र बाँधे बाँहों में  
 बूढ़ पुजारी सा भगता सुने अंबिर का  
 बीपसिखा बुझ गई आरती करते जिसकी !

तीसरा स्वर— भाई, यह तो बस धृति है बीज भर्म की  
 जिसके सम्युक्त प्रगत रहे युग युग से भूजन  
 तर्क धाल कैना जिसने आकाश बेसि-से  
 पाप पुष्प में स्वर्ग मरक में असम्भवा मन !  
 रत्नपात बहु हुए बरा पर इसके नारन

## माहक

जीवन से हो विमुक्त बने जन निर्जन सेवी  
 धोर धर्म विश्वासों के कुहरे में सिपटा  
 कड़ि रीतिवों में बकड़ा हसने जीवन को ।  
 राजनीति ने सिंहासन च्युत कर फिर इसको  
 भौतिक बन से बसीभूत कर, किया पराजित  
 गत युग की बीडिकता ने जीवन दर्शन में  
 नीर फड़क कर, इसके सब का किया परीक्षण ।  
 बनन बनन बन रही बटियाँ अंतरिक्ष में  
 बनन बनन हो रहा समापन एक महायुग ।  
 स्वर्ग भोर है गिने पसित इस पुण्य मूर्ति को  
 जनगण सेवक महाप्राण युग बुद्ध बर्म को ।  
 रजन मजन भागव के अंत स्मित शिखरों पर  
 नव आध्यात्मिकता बिचरे नव जीवन बैठन  
 जन जन जन सब रजत बटियाँ अंतर्मन में  
 नम्य बतना का आवाहन करती धू पर ।

## गीत

बोव लोद, काम सार ।

चूर्न चूर्न मनुज मान

खंड खंड बहिर्जन

मोम भ्रष्ट आत्मध्यान

बहिरुतर कर सुधार ।

बाहर ही तू न बीड़

भीतर ही युग न मोड़,

बोनों के सून बोड़

बोनों को ले जबार ।

एक स्वर— कितने ही बर्धन विज्ञान यज्ञ मनुष्य ने  
 रीति नीतिवों की धाँधी छत मर्मावाह,  
 मनर तन से राजतन भी' प्रवातन बहु  
 परिचासित नित करते रहे मनुज समाज को ।

पर मिट्टी की ग्रंथ झड़ता को मानव मन  
 शीघ्रित हाथ न कर पाया अंतःप्रकाश से  
 उसकी जड़ निर्ममता को कर प्रीति बिभ्रित  
 सँभो नहीं पाया विस्तृत जीवन धोभा में !  
 आति बर्ष के बर्ष ज्येष्ठ के अक्षकार को  
 लंड धुमों की संस्कृतियों के संस्कारों को  
 राष्ट्रों की स्पर्धाओं मिला मर्ती बाधों को  
 मनुष्यत्व में हास न वह पाया मू व्यापक !  
 संस्कृति का गुच्छा पहले जल सम्य वेष्ट में  
 प्रणत रीढ़ पशु मास रहा गत युग का मानव ।।

दूसरा स्वर— यह सिर के बल लकी मूर्ति है किस नर पशु की ?  
 मानव के पूर्वज सा लगता मास मुड़ जो !  
 पुच्छ विपाण बिहीन भरा बहु रोषों से तन  
 वृष्ट मछपी के से वृष मीड़ी मुख भाङ्गति  
 मत्त वृषभ का सा मासल निचसा तन इसका  
 कोन पड़ा यह बड़ में कीचड़ में हुआ !

तीसरा स्वर— किसी मनोविश्लेषक की प्रतिमा लगती यह —  
 सीढ़ी सीढ़ी उतर गहन वासना गर्त में  
 अक्षतन के अक्षकार में घटक गया जो !  
 ऊर्ध्व श्रेणियाँ छोड़ चतना की जो निम्नग  
 निश्चेतन में विचर पशु मास के स्तर पर,  
 उसका अक्षियों में अक्षय इन्द्रिय भ्रम पीड़ित  
 जोन न पाया आत्मशुद्धि का पथ अंतर्मुख —  
 उभरे मोटे धोठो में साजसा बनाए  
 मुँठाघो की रेखाओं से जर्जर धानन !

एक स्वर— धीर अनेकों ललित बिहू यही गत युग के  
 पड़े बूझ भ — अक्षित जिनमें धुँबसी स्मृतियाँ  
 प्राणि जनस्पति जग के जीवन वैविध्यों की !  
 यह आनिम है क्या ? जिसने जीवन विक्रास की

## नाटक

विस्मृत कड़ियाँ पुँछित की निज जीवशास्त्र में  
 वर्णनपर परिवेष परिस्थिति को महत्व दे  
 जगत् बल नमस्कार के विकास का कम सुलभ कर  
 सिद्ध किया मानव को बंधन वाला मृग का —  
 निश्चित्य परबल मात्र मान जीवनी दक्षिण की।

दूसरा स्वर— यह संभवतः कालमाकर्षण। समस्त जीवन का  
 विश्लेषण संश्लेषण कर जिसने विगृह्यपक्ष  
 नव इन्द्रात्मक भूतवाद का युग वर्णन दे  
 धार्मिकीत कर दिया जोव जीवन समुद्र को —  
 धर्मशास्त्र का नव संजीवन पिला जना को।  
 वर्ग क्रांति का पूरा साम्य जन तंत्र विधायक।

तीसरा स्वर— देखो हे यह कुछ बौं सी प्रियमात्र पड़ी है  
 युगल मूर्तियाँ मृग पुत्र हो यहाँ बिनीती  
 बर्बर गहिष्ठ प्राकृति इनकी बीना सा ऊँच,  
 बक मूकटि, दर्पोन्नत धिर, पर मर स्फुरित दूग  
 रक्त सिक्त पुत्र हस्त क्रोध से धूँके नबुने  
 माटी मई वर रीदते हों ज्यों मृ को॥

दूसरा स्वर— राजनीति यों धर्मनीति की प्रतिमाएँ से  
 सैन सैन जो मित रही स्वार्थ की नमस्कीर्ति से  
 कुरूपसंघि करती कुछक रक्तों जम मू पर,  
 धार्मिकीत संघाम सेजती रही निरंतर  
 जन संघर्षों के भिन्न नव अधिकार भोगती।  
 प्राकृति में ठियनी जमता में महाकाय से  
 महाध्वंस साह मू पर धनुषबल संग्रह कर।  
 पूर्ण पूर्ण कर दो इनका स्मृति सेप रूप है,  
 मिट्टी में मिलने से मिट्टी के बेलों को,  
 बहिर्जपत के संघ समस में रहे भटकते  
 ममज प्रेत से निर्मम जग जीवन के बाधक।



## गीत

खोज खोज सर उदार !  
 समय में क्षिपा प्रकाश  
 प्रलय में सृजम विकास  
 मृत्यु अमर का निशास  
 जगत रे नहीं असार !  
 पतझर में नव बसंत  
 सीमा में चिर अनंत  
 बस रहा नवल दिगंत  
 युग प्रभात मुक्त निहार !

एक स्वर— तिमिर तौम छँट रहा कट रहे भूमिल पर्वत  
 स्वर्ण विम्ब नव उदित हो रहा मनोपमन में  
 नवल चेतना किरणों से क्षीपित आसार्पे,  
 उतर रही है दिव्य ज्योति अंत छिन्नरों पर !  
 अस्त विवृत मानस का खँडहर पड़ा बरछ पर,  
 भूमिछात् नत भव भित्तियों के दुर्गम नङ्ग  
 सड़ा माप बन भू खोपक भीतिक आडंबर,  
 निखर रही नव भूर्तों से संपन्न बरिची !  
 ऊर्ध्व पंख उड़ती अमिनब प्राणों की खोमा —  
 स्वर्ण हूँस सी उतर रही निःस्वर जन भू पर  
 ज्योतिर्मयी नवल आध्यात्मिकता नव चेतन !

दूसरा स्वर— यह किसकी प्रतिमा है स्वर्गिक आभा मंडित ?  
 जीवन सुषमा से निर्मित जिसके प्रिय अवयव  
 निरवप्रीति से स्पर्शित विस्तृत कोमल अंतर,  
 कदना विगसित दृष्टि ज्ञान से क्षीपित मस्तक  
 दक्षिण कर में अमय वाम में संजीवन से  
 कौन उतर आई भू तम में यह सुरवाता ?  
 बरती की रब को शोभित करता इसका तन  
 समझ रहा चेतना सिंधु नव विस्तृत बट में !

तीसरा स्वर—इसे देखते ही पहचान गया मेरा मन !  
 यह संस्कृति की प्रतिमा है नव धामा बेही  
 अपने ही उर के प्रकाश से रहस्य नियम से  
 जिसका स्फांतर होता रहता युग युग में !  
 बाह्य शक्तियाँ जब अपने ही युग विप्लव में  
 ब्रंसे ब्रंसे हो जातीं कटु संघर्ष में निरत  
 अन्तर के शाश्वत प्रकाश से यह नव जीवन  
 नव मन निर्मित कण्ठी रहती नव चेतन हो !  
 समाधिस्थ सी यहाँ पड़ी यह आरमभीन हो —  
 इसे देख कर नव जीवित हो उठी हृदय में  
 नव जीवन नव ज्योति प्रीति श्रीशुद्ध की प्राप्ता !  
 जय हो नव मानवता की जय नव संस्कृति की —  
 जिसके पावन धमूत स्पर्श से ब्रंसे सेव से  
 घरा स्वर्ग नव निखर रहा जन मनःसिद्धि मे !

(आद्या-आर्गव-उत्साह चेतक बाज संपीठ)

## चतुर्थ दृश्य

[सिन्धु तट पर एक स्वच्छ सुन्दर वायव्य प्रभात का समय एक नवयुव  
दृष्टा प्रीतितापस भबोदित सूर्य के स्वयं विम्ब को आकाशपूर्वक धर्षितसे रक्त-  
इवेत कमलों की धंजलि अर्पित कर रहा है। आकाश से अनुदित प्रकाश की रंगीन  
पंक्तियाँ बरस रही हैं। नेपथ्य से प्रभात घंटा के स्वर मधुर स्वर प्रवाहित  
हो रहे हैं।]

स्तवन

स्वर्णोदय जय हे जय हे !

ज्योति तमस मिमन माम

जग्य रहस श्री सनाम

जीवन मन पूर्ण काम

जयत् इन्द्र मम हे !

कलक कमल घरा सिलर

प्राण लवधि उठा निखर,

संघम भय गए बिखर

सुर नर विस्मय हे !

मिसे रुद्र स्वर्ग बरा

बुद्धि बनी ज्ञानमरा

सिद्धि लक्ष्मी स्वर्णबरा

जय भिन् परिधय हे !

देव हनुम भिद-मुस्त

मनुज राग द्वेय मुक्त

शेय प्रेय सहज मुक्त

भिर मंगलमय हे !

अन्तर्नय के प्रकाश  
घातित मुख के मुहास  
अति मानस के बिलास

नित नव अतिगम्य है ।

दृष्टा—

नव ऊँचा का क्योति द्वार अब अन्तर्नय में  
भीरे भीरे जुल दीपित करता दिपित को  
मनस्सिद्ध की सहरो में तब स्वर्ण रस्मियाँ  
बेन एही धातोक बूझ भावों से मुसरित ।  
उत्तर रही नव जीवन प्रतिमा धामा देही  
सोमा पंखों में उड़ नव स्वप्नों में मूर्तित  
स्वर्ण शुभ्र नम्रहंम कपोत बिचरते वन में  
बरस रहा सौम्यर्ण अनीकिक बरा तिसर पर ।  
कुसुमित अब भू का प्रांगम जन गृह कुर्बों में  
स्वप्न भरोखे सुसे दीप्त धान अन्तर्नय को  
बिचर रहे हैं गाँव घमन नर अन्तर्नयन  
प्रीति ध्वनित कर भू का उर निम नर बापों में ।  
लुप्त हो गई तब कुस्वप्नों की धामा स्मृति  
हृदय प्रीति लुप्त गई, धुन गए भू के नम्र  
अन्त समिता नवस बेचना की बारा से  
स्वप्न मुत्तर हो उठे मय मन जीवन के तट ।  
परिवर्तित जीवन के प्रति जन भाव कोन अब  
राग हृदय हट गए, मिट गई हिमा स्पर्श,  
धामाउप हो गए अगत के नव संयमित ।  
इंद्रिय पीड़ित बहिर्भूत दिग्भ्रम कुंठित मन  
धारोहण करता अन्तमुख सोपानों पर  
दिप्य मानु बेचना बन गई, प्रहृति बेचना  
ध्वनि बिन्दु के नटु भेदों में स्वर गंगति भर ।  
भीरे भीरे उपबेदन निरबेदन का तम  
धानोमित हो रहा ऊर्ध्व स्वर्णों में प्रेरित

गत युग के समक्षिक विरोध वैपश्य निश्चित बुल  
ममम संतुलन ग्रहण कर रहे अस्त-पूरित ।  
स्वतः दिव्य चेतना धाव संभावित करती  
मानव के जीवन के मन के व्यापारों को ।  
तर्कबाह मिट गए न अब शैलिकता का तम  
हृत्तापों का संवरण प्राणों का विप्लव ।  
विशेष बसत ही विचक देह से जीवन तुल्य  
मानव के करणों पर पड़ी प्रकट छाया ही ।

क्या विरक्त हो गया मनुष्य मन जीवन के प्रति ?  
नहीं श्रुता सकल मिट गई मानव मन की  
विचक कंकित स्वार्थ विरक्त रहा जग जीवन ।  
महं भाव का स्वान ने लिया आत्म ऐक्य ने  
महा ईश्वर सहज समन्वित धाव हो गई  
अंतरतम से योग युक्त हो चेतन मानव  
मुक्त मधुर वैपश्य भोगता विश्व प्रकृति का ।  
आत्म स्थित वह जीवन की आकांक्षाओं का  
बाध न धन स्वामी है वह इष्टा भोक्ता है ।  
जीवन की कल्पना निश्चित अस्त परिचित हो  
भी बीमा धान्दमही बन गई परा पर  
भाव दिखाएँ मुक्ति अन्तर भंकारों से  
संस्तित करणी का मुख अमर कला वीर्य से  
बाह्य योजनाओं से अब न हृदय आतंकित  
अंतः शोभन नर अन्तर्जीवन निर्माता ।  
साति बरसती अंतस का सौन्दर्य बरसता  
क्याति प्रीति स्थित जरा मनाती जीवन जस्तव ।

(ग्राम्य-मनसपुष्पक बाध संवीत जो विगुनी के स्वरों तथा बोझों  
बापों में गूँथ जाता है ।)

कीन आ रहे ये अक्षारोही सैनिक-से  
छत्रों से संश्लिष्ट प्रयाण का बाध बनाते

आराम पराजित विश्व विजय के आकांक्षी जन—  
 सभी दोष हैं भू पर क्या पशुता बर्बरता ?  
 (कुछ सैनिकों का प्रवेश)

प्रतिनिधि— अग्निबादन गत अग्निबादन करते गत मस्तक  
 हम पृथ्वी के लोकतन्त्र सत्ता के प्रतिनिधि  
 विश्व अमय को निरुद्ध है यह संस्कृति मण्डल  
 सद्भावों से प्रेरित नैमी स्थापित करने !  
 सैनिक भूपा में ?

दृष्टा—

प्रतिनिधि—

बरती के रसक हैं हम !  
 महानाथ में अक्षत रहा प्रवेश हमारा !  
 हाहाकार मचा था जब सारी बरती में  
 नव जीवन निर्माण निरत था लोकतन्त्र तब !  
 धर्मपंथी है बीठ पाई उस विश्व ध्वंस को  
 लोकतन्त्रता विधुत् पति से आये बढ़कर  
 विकसित मन हो उठी चरम सीमा में अपनी  
 अन्न वस्त्र से चिर कृतार्थ भू बीबी अमयन  
 आन हमारे अस्व स्थित उस महावेष्ट में  
 पिछा से संपन्न कसा कौशल में बीक्षित  
 सामूहिक जीवन धिस्वी जय के प्रसिद्ध ने !  
 हमने विधुत् बाप्य रश्मि धनु को बस में कर  
 उन्हें लोक जीवन रचना में किया नियोजित  
 सिन्धु गगन से जीवन तरंगित तर्कित सक्ति को  
 सत आविष्कारों से उर्वर किया धरा को !  
 गए फूस कम गई वनस्पतियाँ उपजा कर,  
 गए जम्बु, नव अस्वसक्ति के प्रहरी रण कर  
 हमने बहु यांत्रिक मन यांत्रिक जन निर्मित कर  
 विश्व प्रकृति को किया विविध मानव क्षमता से !  
 बरसाते धन कुत्रिम जन सतमुख जल छीकर,  
 मरुभूमि जीवन उर्वर धन, पर्वत गत मस्तक,

बीज निष्ठा का समस्त रसायन के बाहु से  
स्पर्श बन गई भू, भीतिक विज्ञान स्पर्श से ।  
महत् सम्मता का निर्माण किया है हमने  
शोषण पीडन से रक्षित कर बनवन का क्षम ।

दृष्टा— फिर कृतार्थ हो उठा निभूत सागर प्रांवर यह  
आन आपके शुभागमन से प्राण प्रफुल्लित  
लोकतन्त्र के मापरिको के प्रतिनिधियों का  
हम हार्दिक स्वागत करते हैं उनके अनुसित  
जीवन कीदल से विस्मित हो !

प्रतिनिधि— क्या मह् कोई  
नवा तन्त्र है ?

दृष्टा— यह जीवन संस्कार मान है ।  
जहाँ मनोमर्षों को विकसित कर सावकगन  
नव प्रयोग कर रहे मनुष्य मन के विज्ञान पर ।  
औं धन्तविज्ञान निहित नियमों पर आश्रित  
सर्वों का अनुशीलन कर मानव जीवन का  
रूपान्तर कर रहे अभीष्टा में रत अविरत ।  
धन्तर्मन की सुप्त शक्तियों को जाग्रत् कर  
विषय अवतरण को सचेष्ट करने के प्रार्थी  
आत्म समर्पण से यथा विश्वास प्रीति से  
आवाहन कर रहे महत् जीवन का भू पर ।  
मानव के धन्त धिक्कारों पर नश्य बैठना  
छतर सके जिससे ज्योतिष स्वर्णम प्रवाह सी ।  
हास्यास्पद लग रहे जले हा आन आपके  
समस्तिक आबद्धों में निरत बहिरंत मन को  
ऊर्ध्व जीवन आकांक्षा के स्वप्न हमारे  
किन्तु साधकों का यमीर अनुभव है निश्चित  
नयनत् जीवन ही भू जीवन का अभिष्य है ।

प्रतिनिधि— आन नृणा सन्नेह मत करें अपने मन में  
महत प्रभावित हुए आपकी बाणी से हम—

सत्य जानिए, लोकतन्त्र के बहुधाकांक्षी जन का मन सब धारणों के प्रति जाग्रत है ! जीवन की इच्छाओं से परिपूर्ण प्राण के भौतिक सामाजिक सामारब्धता से अलगव भोभिल सामूहिकता से हो मर्म भाँत जन अंतर्मुखों पर धारोहम को उद्यत है ! दिव्य ज्ञान की बीसा के उपयुक्त पात्र के प्राप उन्हें कृतकृत्य करें अभिनव प्रकाश के आत्मा का स्वर्णिम पात्रक बितरब कर जन में गहन अनुभवों से पोषित कर उनके मन को ! यत् पुन के आदर्श वस्तु विषयक विमोद अब हुए समापन—बड़ बेतन का कटु सचर्षण धर्म काम के बीच पट गई दुर्बल साई बरा स्वर्ग को मिला दिया सब ज्योति सेतु ने । बाह्य विरोध मिटे सब नू जीवन की सपुता अपनी ही मंगुर सीमाओं से लम्बित है । महत् प्रेरणा दिव्य जागरण के हित उत्पन्न बहिर्मुख से भाँत जोबते जन अंतर्मुख ! सख्याओं के कोलाहल से कपित अवर, माधिकता के लीह पर्वों से जर्जर जीवन समतल समता प्रचलित परिचित मध्यमता से फिर बिरक्त हो सब स्वप्नों का आकांक्षी अब ! बरा मरम को भुला अधिर ऐहिकता के हित बहला सकता मनुज न मन को दीर्घकाल तक ! फिर ईश्वर सौमित्र हृदय को मोह बिरत कर प्रेरित करता उसे तत्त्व की जोर के लिए ! लोकतन्त्र का यह अनुभव अब सामूहिकता निगम नहीं सकती अंतःस्थित मनुज सत्य को ! "

(जीति पावनता, आनंदछोपक बाद्य संगीत)



ऐसी पावन शांति सहज जो व्याप्त है यहाँ  
हम नहीं धन्यज धरा में किसी कहीं भी !  
यह कैसा गीहार कांति का रजत साक है ?  
विचरण करता हृदय यहाँ किन खोपानों से  
अंत गुरुमित्र स्वप्नों के नव मुकुटित धम में !  
कैसी स्वच्छ सरस जीवन चेतना यहाँ है  
एक भौतिक धातुधन है व्याप्त चतुर्दिग !  
सिहर रही किस गोपन मुख से मनःशिखर,  
जुल पड़ते अंत बोधा के पट पर नव पट  
अपमक नवनी के सम्मुख — मन को विमृष्ट कर !  
जाग रही सत सूक्ष्म प्रेरणाएँ मानस में  
सिखरों पर नव शिखर उठ रहे स्वर्ग विभव के  
प्राण सिंगु को नव स्पर्श से आहोसित कर !  
कीन देव मे स्वस्व सौम्य स्मित मुक्षमंजरी से  
शांति कांति चिरबरस रही किस अंतःमुख की ?  
दुर्लभ है यह ज्योति प्रीति धामनंद मधुरिमा  
दुर्लभ नू पर अमर चेतना का यह उत्सव !  
मुग मुग से मानव अंतर इस अनृत स्पर्श की  
मर्म मधुर अनुभूति के लिए उत्कण्ठित था ।  
भोक्तृत्व का जीवन वैभव इस जीवन की  
आया की आया है, सर धू रज में लुठित !  
आप हमें परिचय करें नव ज्ञान दृष्टि के  
रिक्त धरा को पूर्ण करें गिर अमर धाम से ।  
आज परम आनन्द मिला जन प्रतिनिधियों के  
उच्चाकांक्षा से प्रेरित बच्चों को सुनकर ।  
यह ईश्वर की महत् कृपा है समस्त जीवन  
आज ऊर्ध्वमुख आरोहण के हित उद्यत है ।  
आज धरा के भौतिकार का गर्त भर गया  
नव जीवन की आकांक्षा के नव प्रकाश से  
यू जीवन है नमो मित्र भए, भेद भर गए,

१५५—

## भाटक

स्फांतर हो रहा प्रकृति का परम दया से ।  
 प्राप सहज प्रातिप्य करें स्वीकार हमारा  
 सापसंग को जनसेवा के हित प्रसर से ।  
 भयवत् कल्या जनगण पर चरितार्थ हो रही  
 स्फांतर का समय निकट धबधु जीवन का ।

देख रहा मानव भविष्य में सूर्य दृष्टि से  
 विगत राजनीतिक प्रायिक तर्कों पर विजयी  
 भू पर मानव तंत्र हो रहा प्राण प्रतिष्ठित  
 मनुष्यत्व के ऊर्ध्वग मूर्त्यों पर आधारित ।  
 वैश्विक बातों स्पूस मर्तों से मुक्त परा जन  
 स्वतः जिस रहे पुर्ण-से प्रतः प्रतीति स्मित  
 उर के सीरम में मज्जित कर स्वर्ग लोक को ।  
 प्राप्ति बल करें प्राज उस परम शक्ति का  
 श्रीकानक बहु विश्व महत् जिसकी इच्छा का ।

## गीत

ज्योति बाहिनी  
 प्रभूत बाहिनी  
 जनत पावनी ।

उत्तरो भू पर निकाम  
 जन मन हा प्रीति नाम  
 जीवन सोना समाम  
 स्वप्न बाहिनी ।

मुक्त रक्त उर प्रसार  
 केतन में जये जगद,  
 प्राणों में नव निहार  
 मनुष्य बाहिनी ।

कुमुमित मू नाथ द्वार  
 धतुर्मुल जन बिभार  
 भीतिन थी मुग अपार  
 स्वर्य भाविनी !

प्रमु पर ब्रह्मा प्रसीति  
 संस्मृत हों रीति नीति  
 बिबित भर रोप भीति  
 मृत्यु पाविनी !

**अप्सरा**  
(सौन्दर्य चेतना का स्पर्क)



अप्यस्य  
वसाकार  
ध्वनियौ  
प्रतिध्वनियौ



## प्रथम दृश्य

(भावोद्वेलन)

[यम बिभिन्न की दृष्टि जितना में हृदय सरोवर के तट पर कलाकार ध्यान में बैठे हैं। सामने भावनाओं की स्वर्ण गुच्छ बोनियाँ, बिचारों के रत्न कुहासे में बीरकर निकल रही हैं। आकाश से प्रेरणाओं की लहरियों द्वारा धरमपुर स्वप्नबाहक संगीत मुँजरित हो रहा है।]

अप्सरा का गीत

धम धम चल नम पायल  
बजती मेरी प्रतिपल  
नित नीरव नम से रव  
मरता मेरा प्रतिकल !

मर्मर भर अस्फुट स्वर  
गाते बन के तबदल  
लहरों पर मृदु पल भर  
फिरती मैं रह प्रोमल !

अर्धग पल सौरभ स्मय  
जड़ता मेरा धँसल  
भूँसट भर धसि मुख पर  
हँसती मैं स्वर्णोन्मल !

जीवन के धौगन में  
ऊँचा की स्मिति निरदल  
छायाप्रप मैं कौन कौन  
संघ्या में जाती हम !

(संगीत-लहरियाँ धीरे-धीरे बिलीन होती हैं)



कलाकार— यह कैसी संगीत श्रुति हो रही यगन से  
 या मेरा ही ध्याम मीन मन गा उठता है ?  
 कैसा आकर्षक है यह, कैसा सम्मोहन  
 यह सौन्दर्य मधुरिमा कोई मेरे मन को  
 जैसे बरबस बाँध रहा हो । क्या है यह सब ?  
 प्राणों की व्याकुलता जीवन की व्याकुलता ।  
 यह सब तो मैं जीवन का रोमांच द्वार भी  
 पार कर चुका जब मंचरित दिगंत बरा का  
 पागल कर देता था मन को !

यह भावकता  
 यह सुन्दरता यह सम्मोहन अकथनीय है,  
 अकथनीय । आश्चर्यचकित हूँ । बाहर भीतर  
 ऊपर नीचे — नील व्योम पर, पिरि सिंहरों पर,  
 हरित बरा पर,—वही मधुर सम्मोहन मुझको  
 बुला रहा है । सबने मुझको बेर लिया है ।  
 बंदी हूँ मैं बंदी । सम्मुख रखत सरोवर  
 पर्वत की बाँहों में जैसे बैठा हुआ है ।  
 इन पाषाणों के भी क्या प्रेमार्द्र हृदय है ?  
 ऐसा ही आकुल ज्वलन हो मेरा मन भी  
 जीवन के पुलिनों से टकराता रहता है ।  
 जैसे कोई शोभा छाया मेरे मन ॥  
 लिपट गई हो धीरे उसी के सन्धियों पर  
 मेरा जीवन नाच रहा हो । भिस्मित हूँ मैं ।  
 मही जालता स्वर्ण लोह की कौन धपहरा  
 मेरे भीतर समा गई है, जिसने मन को  
 निज स्वप्नों के फूल पाथ में बाँध लिया है ।  
 यह समस्त सौन्दर्य मुझे सगता है जैसे  
 उसका एक कटास पात है । मुख पर म्रिमिल  
 फिरनों का झूँट है स्वर्णिम छाया पट से  
 आँखमिचौनी सिना करती है ॥ मुझसे ।

उसके शरीरों के सी सी भावनों में पड़  
 बहते हुए कमल का मेरा मन जाने कब  
 एक लहर के बाहुपाश से छूट दूसरी  
 लहरी के जंजल जंजल में बँध जाता है।  
 शोर अराजकता है प्राणों के प्रवेश में।  
 शतकपा के राजकुँवर का मोहित हो मैं  
 भटक गया हूँ किसी शून्य अन्तराल में।

### अप्सरा का गीत

जब निमृत्त नीलिमा कुण्डों में  
 ऊपाएँ जग कर मुसकालीं  
 मैं अर्ध लुभे नाटायन से  
 अपना स्वयं मुक्त विचाराती।

जब कनक रश्मियाँ कमलों के  
 गोपन प्राणों को उकसातीं  
 मैं सौरभ की जल धसकों में  
 गुंजरन रहस हूँ उत्साराती।

मैं शशि की रजत तरी पर चढ़  
 तारापथ से घाती जाती  
 मेघों के सतरंग धिलरों पर  
 स्वप्नों के नेत्रन फहराती।

मैं मन-चितिब के पार जहाँ  
 स्वप्नित हामाएँ मँडरातीं  
 गत संभ्राणों के पसनों में  
 धमिलन प्रमात हूँ विकसाती।  
 कबल न प्रकृति ही का प्रायण  
 मैं रंग वृष्टि में नहसाती

मैं घंटेर जस की भी धपनी  
स्वप्निल सुपमा मैं लिपटाती ।

(गीत के स्वर प्राणोगमाहन बाद्य ध्वनिमों में डूब जाते हैं)

कलाकार— ज्ञान कहाँ लो गया समस्त मनोबल जाने,  
आज मिलिभ प्रध्वयन मनम चिन्तन जीवन का  
व्यर्थ हो गया ज्योतिरिगणों-मे जलमम कर  
निष्प्रम पड़ते जाते हैं धावर्ष मुनहमे  
छायाओं-मे पीके पड़ कर बुझते जाते  
धीप ज्ञान के मेलों के बन धक्कार में  
ध्मोहित कर पा रहे नहीं वे जीवन का पथ ।  
किन भ्रमात गुहाओं का सम्मत् तमस मह  
आज न जाने समझ रहा जीवन मूर्खों का  
अतल निमग्नित करने निज उच्छ्वस प्रवाह में !!

अँधम हो उठवा फिर फिर मन । 'बहु क्या केवल  
प्राणों का उद्वेगन है ? या मन का अम है ?  
अधना बबल रहा युग करमठ ? मन के भीतर  
नया स्रष्टा का अगम है क्या ? 'महाराजि है ।  
यह कैसी ममेर ध्वनि जग उठती प्राणों में ?  
जीवन के झूठे पंजर में नव स्वप्न भर  
एक नई बैलगा लपेट रही मानस को  
प्रपनी स्वर्णिक शोभा के अग्नितव बैसब में—  
पुलक पस्तमित हो उठवा तन सुख भँप से ।  
स्वप्नों के रंगों में वेष्टित कर प्राणों को  
गह बसंत हो फूट रहा अंत-शोभा स्मित ।  
बूँदना पड़ता जाता मन का पिछला सचम  
उपभोग के गहरे गठों की विस्मृति में  
एक गया सौन्दर्य प्यार उठवा अन्तर से  
बरबी के पड़ पुत्तिनों को प्रक्षालित करने ।

(स्वप्नवाहक बाद्य संगीत और सङ्गान)

ध्वजरा— मैं स्वप्नों के बस जलसाती  
घंटर सौरभ बन आ जाती  
मैं त्यहीन बुध विस्मित कर,  
स्वप्न छन्द रहित सय में पाती !

कलाकार— तुम क्षया सी क्षिप्त विजमाती  
उर में धाकूमता रुपजाती  
घो रंगमयी तुम घंटर को  
घोना ज्वालों में नहमाती !

ध्वजरा— मैं मन के नयनों में आती  
उर के अक्षरों में बतमाती  
मैं ध्यान मीन अंतर्भव में  
स्मित भावों के पर फैसाती !

कलाकार— तुमको प्रतीति करता अर्पित  
उर की यज्ञा से अभिनक्षित

ध्वजरा— मैं आत्म समर्पण के क्षण में  
निर्भर प्रकाश के वरजाती !

(आवाहनसूचक वाद्य संघोत जो मानसिक संघर्ष-स्रोतक संघोत में परिणत हो जाता है।)

## द्वितीय दृश्य

(मानसिक संघर्ष)

[जीवन की हरी-जरी घाटी पृथ्वी में आरोहण करता हुआ मन का सोपान रत्नत घूमित गिरिगुह्य-सा दिखाई दे रहा है। नीचे प्रथम प्रसंगेतर संस्कार में काली घटाएँ घनेक कस्तित आकृतियाँ धरकर उभड़ रही हैं।]

कमकार— कौन पुकार रहा मुझको पश्चात् देख से  
या वह मेरे ही अंतरतम की पुकार है।  
आरोहण कर रही भावना किन घनमाने  
छोमा के सोपानों से किंतु नष्ट लोक में  
जीवन के मन के स्वर्गों को धार कर निहित।  
नव मानवता के विकास का ज्योति दिखर उठ  
दीप्त रहा सगुह्य स्वर्णित पंखों ॥ स्पर्शित।  
एकाकी विचरण कर अंतस्मित व्योमों में  
स्वप्न कलांत अतना उठरती जब बरती पर  
जहाँ गुमुल जन कोलाहल गुह्य अंधन छाया—  
तब जैसे समता है वास्तवता से कट कर  
बाप्य खंड सा अपने ही कल्पना जगत में  
उड़ता फिरता है मन रिक्त कुहासा जन कर  
अपने ही स्वप्नों के इन्द्रधनुष में रजित।  
बादल भी जो नहीं बन सका बिछुके उर में  
गर्जन है तर्जन है, बिद्युत् जल सीकर है।  
बरस बरस जो परती को निव उर्वर रसता  
पानों की हंसमुख हरियाली में पुष्पकित कर।  
भोर अर्धमति घाम बाह्य भीतर के जग में ॥  
यह यह कैसा संघर्ष का तम धिरता मन में  
कमाकार घट छायाऽदृष्टियों में कौं कौं कर,

रंग वहीं को भग्न पीड़ बरती की रज में ।  
ऊपर के नीरव आकाशों में भीतर कर  
सूजन चेतना रही ॥ है लोक कर्म को  
अनुप्राणित करने अपने अमिनक प्रकाश से ।  
मध्य समुत्थन कब आया जब बरनी के  
ऊर्ध्व समस्त जीवन को छोटा कल्पित कर !

(नैराशयतुलक वाद्य संगीत)

युग चेतना का गीत

युग-चेतना—

चुमड़ रहा अन्धकार, अन्धकार,  
ह्रास नाश का तमिज बुनियाद ।  
बरती की गुहाएँ, वहीं पुकार  
उमड़ रहा घोर सूजन प्रलय न्धार ।  
प्रलय न्धार !

पुण्य धनियाँ—

ये सृष्टि कृष्टि कामाएँ,  
ये सृष्टि पुष्टि छायाएँ,  
बरती को बीतों से पकड़े  
फिरतीं लोभी बाँहें पसार !  
ये जब बरनी के बुद्धिमात्र  
प्राप्त बिनका मिथ्याभिमान  
गठ बरा चेतना के प्रतिनिधि  
रोके जो मानव मुक्तिद्वार ।

कोमल प्रतिधनियाँ—

ये महर् दिव्य के अकरोचक  
अपनी सीमाओं के पोषक  
मन मनुष्यत्व के विद्वेपी  
निज कुठा का करते प्रचार ।  
रेती सी नीरस भग्न मरी  
बीडिकता के छट पर बिजरी  
विद्यार्थों की मृग तुप्पा में  
ये मटक करते बार बार ।

पश्य ध्वनिर्वा—

गिरगिट-से रंज बरस अवजित  
युग परिवेशों को कर बिम्बित  
य धत प्रतिरोध लड़े करते  
युग जीवन धारा के सिन्धार !  
मिन्नग अवचेतन के पुञ्ज  
प्रतिध्वनन के पथ कटक  
ने बिहोही नर नहीं तुच्छ  
मानव होही युग के संगार !

कोमल प्रतिध्वनिर्वा—

जन जीवन में जो उच्च महत्  
वह हर्षे नहीं होता वृणगत  
निज समित सासना का जन में  
ये देखा करते बड़ भार !  
हनुको प्रिय नहीं उवाच भाव  
मनु तुच्छ वृणित से विह्वल भाव  
कुछ उलट गई है ऐसी भति  
ये सिर के जन करते बिहार !

पश्य ध्वनिर्वा—

युग जीवन कर्म के दाबुर  
समवेत कष्ट नाते बेसुर,  
जनता जनता रटते उसका  
मानवता से कर बहिष्कार !  
य जन बरनी के बुद्धिमान  
आहत बिनका मिथ्याभिमान  
ये जन चेतना के प्रतिनिधि  
रोके मानव का भुक्ति द्वार !

युग-चेतना—

भुमड रहा धन्वकार, धन्वकार,  
माघ में बिकास पा रहा निक्षार,  
प्रत्यक्ष की नुहा रही पुकार  
गव प्रकाश छटा रहा तिमिर ज्वार,  
तिमिर ज्वार !

(युग-विचर्तनसूचक वाद्य संगीत)

कलाकार— विपरीत रहा प्रायः विगत यम-संगठन मनुष्य का  
पूर्ण हो रहा जीवन ग्रहण का विमान मित  
प्रायः होर अभिविद्य कीति छाई नभ मू पर  
निगत रहा जीवन तृप्ता का धनचैतन तम  
मानव आत्मा के मूर्खों के ध्रुव प्रकाश को ।  
उत्तर नहीं पा रही नभ्य सौन्दर्य चेतना  
युग कर्मण से पंक्ति धरणी के प्रायम में ।  
प्रायः गया दायित्व भार है नभ्यवर्ग के  
सूचन प्रायः युग जीवन विस्पी के कर्म पर,  
धरती की सौन्दर्य चेतना का प्रतिनिधि जो ।  
युग मन के बिहारे धनगढ़ उपकरणों को स  
मनुष्यत्व की नभ प्रतिमा कल्पित कर उसको  
प्रायः प्रतिष्ठित करना है जन मन मन्दिर में ।  
युग धावेणों के कटु कोसाहस में उसको  
नभ जीवन की स्वर संयति भरनी है व्यापक  
वस्तु परिस्थितियों के निश्चेतन पदार्थ को  
उसे दानना है विकसित मानव चरित्र में ।



## तृतीय दृश्य

(उन्मेष)

[सूक्ष्म वाय्वों का स्वर्णिम छाया-सेतु इन्द्रधनुष की तरह बरती-आकाश के बीच टैपा है जिसके ऊपर लड़ा कलाकार ऊपर को देख रहा है।]

### अप्सरा का गीत

मैं ही छिब हूँ मैं ही सुन्दर,  
मैं अन्त सत्य अनन्द,  
मैं युग साक्षिण से मुक्त धात्र  
फिर उतर रही बसुन्दा पर ।

युग लौहधर पर जो मौखरते  
वीर्य पर्वों के पतम्बर,  
मैं उन्हें मिलाती मिट्टी में  
नव मधु की खाव बना कर ।

जो युग प्रबुद्ध जो नव जाग्रत  
अज्ञारत सवेदनपर,  
मैं उनके अन्तर धिल्लों को  
छूटी फेला स्वर्गिक पर ।

जो ग्रह भूष कृमि स्रपि  
केंचुओं धोनों पर ग्योष्माण्ड  
मे सरीसृपों का रंग बोध से  
रेंगा करते ध्रु पर ।

मैं मानवता की तपपुत्र  
शील्यं धनमा : मास्वर,  
निज रहस्य स्पर्श से विकसाता  
भावों का वैभव प्रसर !

कस्याण क्याति ऐश्वर्यधिया  
घानंद सरित रस निष्कर  
मैं निष्कर रही फिर प्राणों का  
पहुने स्वर्णिय छायावर !

(बाह्य ध्वनि आरोहण करती हुई बीरे-बीरे विसीन हो जाती है)

कलस्तार— एक नया चैतन्य जसा अध्यात्म बरस पर  
बस से रहा मानव धंतर के सतरस में  
निज स्वर्णिय किरणों के वैभव में मग्निबत कर  
मनुज हृदय की तिलिप खुलता छद्म प्रहृता ।  
एक महत् चैतन्य उदय हो मानवता क  
ऊर्ध्व भाल पर मुकुट रख रहा स्वर्म ज्योति का ।  
एक महत् अध्यात्म मुर्गों की बार्मिक नैतिक  
सीमाओं को प्रतिक्रम कर, मानव जीवन को  
सँको रहा फिर पूर्ण समन्वय की समिति में  
नव्य सतुजन भर नू की मिश्रतुल्यता में  
प्रापिक समता वर्ग हीनता के छोरों को  
धंतरिक्य के रस्मि सतु में बाँध प्रसौकिक  
भीतिकता को साम्यवाद को साम्यवादात् कर ।  
महाश्रमन की दिव्य प्रकटरण की मर्मर ध्वनि  
गूँज रही धंतरतम के गोपन गहनों में  
हिस्तोभित हो रहा परा चेतना सिन्धु प्रब  
नव आवेगों के प्रति गति मंभा प्रवेग से  
मूकम भार से प्रमत बीकते बरा टिक्कर सम  
मय प्रकाश के रहस्य स्वर्ण से दादोभित हो ।  
संश्लिष्ट हो रहा माइ तम प्रकभेदन का

रात विरोध की झिज्जर तरंगों में भुजंग सा  
 प्रामोदित हो उड़त फल रात फूटकारें भर,—  
 गरम घेन बहुत उगल प्रचेतन के तरकों का !  
 धात्र मए राबन उपजे हैं नए राम का  
 युग अभिषादन करने को सतमुख शीशों से  
 देवासुर संघाम झिड़ रहा जन मन भू पर  
 अभ्रुत चापों से गुञ्जित जग जीवन प्राबल !  
 स्वयंवर बन लड़ी गुंठिया बरा चेतना  
 प्रकट हो रहे मनोनील में मोक्ष पुष्प तब —  
 जीवन मायताओं का जबरन धाप तोड़ने  
 मन जीवन की धी शोभा को बरने के हित  
 प्राकृत बचन प्राज्ञ पुन जन बरणी का मन !

[प्रामोदमादक बाद्य संगीत]

### बरा चेतना का गीत

मैं प्यासी की प्यासी !  
 बरती की चेतना मूक  
 जन मंगल की अभिभाषी !  
 मुन के कर्म में लिपटा तन  
 प्रचेतन तन में घटका मन  
 जीवन स्वर्ग बसाने को  
 कब से प्राकृत बटबासी !  
 मैं उदात्त भावों की छोटक  
 महत् उच्च कर्मों की पोषक  
 सत्य बनने कब ये मेरे  
 स्वप्न धमर अभिभाषी !  
 तुल्य राम होपो से पीड़ित  
 बुद्ध धेनि नगों में ललित  
 कब मेरे जन होये चेतन  
 मानव भाव प्रकाशी !

मानव मेरा पुष्प रास्य फल  
 बरि न छोना जायत् उन्मम  
 भवकार मे सनी खूँयी  
 बनी दुखों की बासी !  
 मेरे भूक हृदय में प्रतिक्षण  
 जगता चूता स्वयिक स्पर्शन  
 धमर बेतना है कम मंडित  
 होंगे मृत्यु बिसासी !

कलाकार— ईसावास्तु मिर्ब सब कहने इच्छा अपि  
 उपनिषदों के जयती में जो कुछ प्रत्यक्ष है  
 वह जगत् सत्ता है जग की निश्चित वस्तुएँ  
 ईश्वरमय हैं वही सत्य है सार रूप में !  
 पर विकास प्रिय भू जीवन के इन्द्र लोभ में  
 ईश्वर के साक्षर स्वरूप से उसके बासी  
 महत् रूप ही का आकांक्षी है मानव मन !  
 जगत भाववत् जीवन मित्य पदार्थ नहीं है  
 ईश्वर का ही अंत जगत् आरोहण पथ पर,  
 जिसका पूर्ण प्रकारोपर होना निश्चित है !  
 राग द्वय के होने पर से मानव जीवन  
 विचर सकेना समस्त ऊँचाई में उठ कर !  
 मनुज नियति ऊर्ध्व जीवन के द्विज उद्यत हो  
 धाम सुषों के द्वार पुन अरिस्तर्ब हो रही !

मनुज नियति का गीत  
 मनुज नियति में निर्मम  
 जग जीवन के पथ में जिसको  
 हस्ता धामा त्रिप्रभ ।  
 बिटी लमिता जोर धौधेरी  
 पुन बज रही मुख रथ धेरी  
 नव किरणों का विजय हार से  
 उतर रहे तुम मिरम !

भीत रहीं यत मोह निघाएँ  
 निघर रही घब नई बिजाएँ,  
 गहन सभि बेला प्रकाश का  
 सातक यह शकन तम !  
 बुझा घब तारणों का नम  
 वृत्त भेतना का यत निष्पन्न  
 हामा के घबस में निपटा  
 नव प्रकाश का उपक्रम ।  
 स्वप्नों की चापों से युजित  
 यह पगध्वनि मेरी धिरपरिचित  
 पूर्ण काम करने फिर मुझको  
 नबस तुम्हारा धामन ।  
 सफल धाम तप चिन्तन साधन  
 सफल युगों के मीन धामरण  
 सार्धक सीह पगों का मेरे  
 बुर्मम भूपन का धम ।

## चतुर्थ दृश्य (रूपांतर)

[प्रभात के प्रकार से स्वर्णिम जन बरफी का प्रांगण सता-सताओं की एक छोटी-सी बर्फ़ुड़ी के द्वार पर कड़ा कसाकार नव प्रभात की शोभा बैल रहा है।]

कसाकार— क्या है यह सौन्दर्य बेतना ? जग जीवन की  
घंटरतम स्वर संगति को जब घंटरतम के  
धिकारों से है उतर रही स्वर्णिम प्रवाह सी  
स्वप्नों से शोभा उर्वर करने पसुषा को !  
जीवन का आनंद स्वत ही मुक्तिमान हो  
बैल रहा निज रत्नच्छाया स्मित वैभव को !  
मानव के अपलक हृत् घटवल में मुक्त दोलित  
दिव्य प्रेम का धमर स्वप्न प्रस्फुटित हुषा जब  
घंटरतम की प्रथम उषा में धात सौम्य स्मित,  
यह जीवन सौन्दर्य बेतना में लिपटा था !  
ज्योति प्रीति आनंद मधुरिया —जब मानव का  
जीवन भी पर्याप्त बन रहा उसी क्षण का !  
घटरेण्य में बाह्य साम्य में संवोदित हो  
यू जीवन नव शोभा का प्रतिमान बन रहा !

(यू-जीवन के रूपांतर का लुब्धक आनंद-अस्तासव मधुर वाद्य संगीत)

### अप्सरा का गीत

मैं जन बरफी के प्रांगण में  
स्वर्णिम पावक कण बरसाती  
सौन्दर्य प्ररोहों की लपटें  
बेतना भूमि में उफ़ाती ।

मैं ही सू सय्या पर सोई  
 मैं गिट्टी के तम में खोई  
 मैं ही यशु ऋतुघा का बैभव  
 रज के राशों में सुमगाती !  
 सुवस्ता की स्वर मय में निव  
 जीवन मानो को कर ऋकृत  
 स्वर्गिक गुणमा की ज्वाला में  
 मैं मानव उर का भिपटाती !  
 मैं स्वप्न के रज पर छाती  
 मैं भावों के पर रंग खाती  
 प्राणों के सौरभ से गुलिन  
 छायातप में कैंप सहराती !  
 मैं धरा चेतना की आभा  
 मैं स्वर्ग शिखि की हूँ आभा  
 मैं अपाशों के ज्योति क्यु  
 मानस छिन्नरों पर फहराती !  
 सौन्दर्य चेतना मैं मन की  
 भी आभा मानव जीवन की  
 मैं स्वप्न संमिनी जन जन की  
 क्षिप्त हृदय कूँज में मुसकाती !

कलाकार— उच्च उच्चतर धोपानों पर बड़ अधिमन के  
 प्रति मानस के दिव्य विभव से अभिप्रेरित हो  
 मनुज चेतना उपचेतन की अन्ध गुहा को  
 अवमाहित कर रही निखिल कस्मप कर्षय से !  
 विगत अहंता का विधान विकथित बन्धित हो  
 मुक्त हो रहा राग द्वेष क्रुधा स्पर्धा से !  
 भेद भाव मिट रहे, छूट रहा संशय का तम  
 उदय हो रही अंतर्मुख भावना धाम्य की !  
 नव प्रतीति से सहज प्रीति से भरित होकर  
 मानव मानव को विलोकता गए रूप में !

संयोजित हो रहा मनुष्य मन नव प्रकाश में  
जन्म में रही नव मनुष्यता हृदय क्षितिज में ।

मनस्फेसना का गीत

धू मानस में भाषी ।  
मेघों के घन घनतरांग से  
स्वर्णमय मुक्त दिखभाषी ।

ध्वस्त पड़ा युग मन का सौंहर  
उमड़ रहे बनबोर बरंडर,  
दिक कपित घंटर सिखरा पर  
नव प्रकाश बरसाओ ।

उठेसित धू जीवन सागर  
भोट रहीं घात सहार सहार पर,  
मानवता की भरी ली यह  
फिर से पार सपाओ ।

सुधा लुपा कूलों में पोषित  
जन जीवन की घारा पोषित  
पुलिन मग्न कर, नई बैठनाका  
युग न्धार उठाओ ।

भाव व्यभिमत सुख स्वार्थरत  
उर में जन मयस हो जाग्रत्  
धमृत प्रीति की बिहव भावना  
मन में महत् जवाओ ।

धंतर्मेन से जिसे प्रेरणा  
जन जीवन की बने योजना  
आत्म त्याग के पूत रक्त में  
तू के कमल बुझाओ ।

कलाकार— कैसा युग है कूर हमारा हाथ नाश का  
कलाकार के लिए नरक हो गई बरस यह,



शोमाजीवी उर को जीवन की कुबपठा  
 नागिन सी बँसती रखती घट पल फैसाए !  
 प्राणचेतना भयोमुसी हा भवचेतन के  
 तम में सिपटी रेंग रही है भग्न रीढ़ पर,  
 भारोह्वय कर पाठी नहीं हृदय आकांक्षा  
 स्वप्न पंख सौन्दर्य चेतना के स्वर्गों में !  
 ग्राह्य कुंठित भूजन प्रेरणा मृतवृष्णा बन  
 मन के मझ में भटक रही जीवन विरक्त हो ।  
 धर्ममग्न का बिम्ब उठर प्राणों के स्तर पर  
 शोमा मज्जित कर पाएगा कब जीवन को ?

प्राण चेतना का गीत

प्राणों में गिरते !

भू पत्र पर जीवन शोमा के

नभ रस पर बिचरते !

रक्षित क्षुत्तिधों की कर में पर

मोह नीक अभिनव धकित कर

दुर्बल इच्छा के धारकों को

संयत स्वयं करो ।

स्वस्थ हों नभ प्राणों के स्तर

गुचित हो स्वप्नों से प्रंतर

मित्र स्वर्णिम रस चक्रों का रस

मन में भर भरते ।

नभ आकाश से कुमुदित हो मग्न

नभ अभिलाषा से मुञ्चरित पय

नभ विकासमय नभ प्रगतिमय

निर्मय करन करो !

जीवन मंगल का हो उत्तम

श्री सुप्त गुपमा का हो वैभव

नाटक

मम रस के निर्झर-से भर तुम  
 जन मन तृप्ता हरो ।  
 अमृत स्पर्श है हो तम पुनः कित  
 मीन मधुरिमा से मन मुकुलित  
 दिव्य सिखा ले मुझ तमस के  
 गह्वर में उतरो ।



मकरस के निर्भर-मे मर तुम  
जग मन गुपा हरो ।

धमृत स्पर्ध से हो तन पुनक्ति  
मीन मरुरिमा से मन मुहुमि  
विम्व शिला से गुह्य तमस के  
गह्वर में जहरो ।